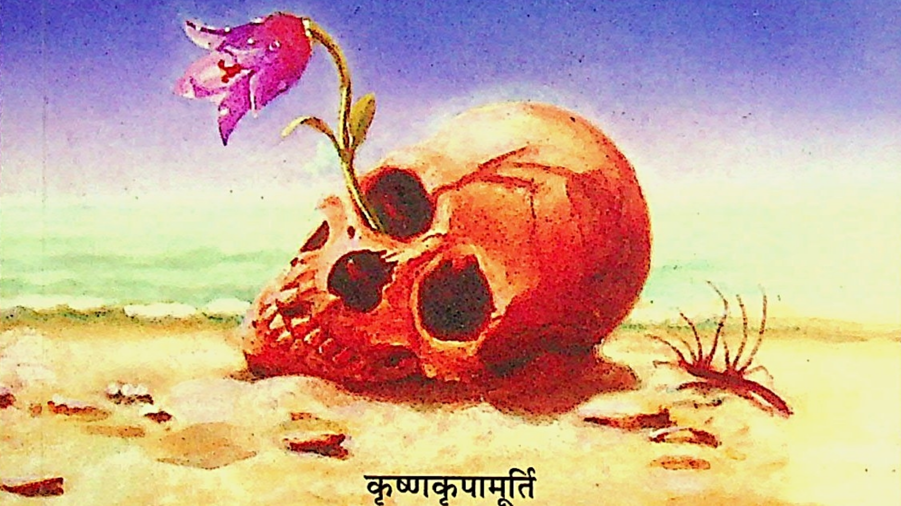
जन्म और मृत्यु से परे



कृष्णकृपामूर्ति

श्री श्रीमद् ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद

संस्थापकाचार्य : अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ

जन्म और मृत्यु से परे

कृष्णकृपामूर्ति श्री श्रीमद् ए. सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद द्वारा विरचित वैदिक ग्रंथरत्न :

श्रीमद्भगवद्गीता यथारूप
श्रीमद्भागवतम् (१८ भागों में)
श्रीचैतन्य-चरितामृत (९ भागों में)
लीला पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण
भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु का शिक्षामृत
भक्तिरसामृतसिन्धु
श्रीउपदेशामृत
श्रीईशोपनिषद्
भागवत का प्रकाश
अन्य ग्रहों की सुगम यात्रा
आत्म-साक्षात्कार का विज्ञान
कृष्णभावनामृत : सर्वोत्तम योगपद्धति
पूर्ण प्रश्न पूर्ण उत्तर
देवहूतिनन्दन भगवान् कपिल का शिक्षामृत
प्रह्लाद महाराज के दिव्य उपदेश
महारानी कुन्ती की शिक्षाएँ
रसराज श्रीकृष्ण
योगपथ : आधुनिक युग के लिए योग
जीवन का स्रोत जीवन
जन्म-मृत्यु से परे
कृष्ण की ओर
राजविद्या : ज्ञान का राजा
कृष्णभावनामृत की प्राप्ति
कृष्णभावनामृत : एक अनुपम उपहार
भगवद्दर्शन पत्रिका (संस्थापक)

अधिक जानकारी तथा सूचीपत्र के लिए लिखें :
भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट, ईस्कॉन मंदीर, हरे कृष्ण धाम, जुहू, मुंबई ४०० ०४९.
ये पुस्तकें हरे कृष्ण केन्द्रों पर भी उपलब्ध हैं। कृपया अपने निकटस्थ केन्द्र से सम्पर्क करें।

॥ श्री श्रीगुरु–गौराङ्गौ जयतः ॥

जन्म और मृत्यु से परे

कृष्णकृपामूर्ति

श्री श्रीमद् ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद

संस्थापकाचार्य : अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ



भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट

इस ग्रंथ की विषयवस्तु में जिज्ञासु पाठकगण अपने निकटस्थ किसी भी इस्कॉन केन्द्र से अथवा निम्नलिखित पते पर पत्र-व्यवहार करने के लिए आमंत्रित हैं :

भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट
हरे कृष्ण धाम
जुहू, मुंबई ४०० ०४९

वेब / ई-मेल :
www.indiabbt.com
admin@indiabbt.com

Beyond Birth & Death (Hindi)

First Printing : 10,000 copies
2nd to 32st Printings : 6,65,000 copies
33rd Printing, January 2013 : 1,00,000 copies

ISBN : 978-93-82176-87-9

भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट-मुंबई द्वारा भारत में मुद्रित।

MBG2

अनुक्रमणिका

१

हम ये शरीर नहीं हैं

देही नित्यमवध्योऽयं देहे सर्वस्य भारत।
तस्मात्सर्वाणि भूतानि न त्वं शोचितुमर्हसि॥

"हे भरतवंशी, शरीर में रहने वाला देही (आत्मा) सनातन है और उसका कभी भी वध नहीं किया जा सकता। अत: तुम्हें किसी भी जीव के लिए शोक करने की आवश्यकता नहीं है।" (भगवद्गीता २.३०)

आत्म-साक्षात्कार का पहला कदम अपने को शरीर से भिन्न समझना है। "मैं यह शरीर नहीं हूँ, बल्कि आत्मा हूँ" यह अनुभव करना उन मनुष्यों के लिए अनिवार्य है, जो मृत्यु को लाँघकर इस लोक से परे वैकुण्ठलोक में प्रवेश करना चाहते हैं। यह केवल कहने की बात नहीं है कि, "मैं यह शरीर नहीं हूँ," बल्कि वास्तव में अनुभव करने की बात है। यह इतना सरल नहीं है, जितना शुरू में लगता है। यद्यपि हम ये शरीर नहीं हैं, किन्तु एक विशुद्ध चेतना हैं, फिर भी हम किसी न किसी तरह शरीर रूपी वेश में बँध गये हैं। यदि हम वास्तव में ऐसा सुख और स्वतंत्रता चाहते हैं जो मृत्यु से परे

हो, तो हमें विशुद्ध चेतना की अपनी वैधानिक स्थिति में अपने आपको स्थापित करना होगा और उसमें बने रहना होगा।

देहात्म-बुद्धि में रह कर सुख के बारे में हमारी जो सोच है, वह एक विक्षिप्त व्यक्ति की सोच जैसी है। कुछ दार्शनिक ऐसा दावा करते हैं कि शारीरिक पहचान की इस विक्षिप्त स्थिति की चिकित्सा कोई भी कर्म न करके करनी चाहिए। क्योंकि ये सांसारिक क्रियाएं ही हमारे दुखों की जड़ हैं, इसलिए वे दावा करते हैं कि हमें ये सभी क्रियाएँ वास्तव में बन्द कर देनी चाहिए। उनकी पूर्णता का चरम बिंदु बौद्ध निर्वाण जैसा है, जिसमें कोई कार्यकलाप नहीं किया जाता। बुद्ध ने सदैव यही कहा कि भौतिक तत्त्वों के संयोग से यह शरीर उत्पन्न हुआ है और यदि किसी न किसी तरह हम इन भौतिक तत्त्वों को भिन्न कर दें या विखण्डित कर दें, तो सभी दुखों का कारण दूर हो जाएगा। यदि कर-अधिकारी हमारा बड़ा घर होने के कारण हमें बहुत परेशान करे, तो इस समस्या का एक सीधा सादा हल यह है कि उस मकान को ही नष्ट कर दिया जाये। परन्तु भगवद्गीता बताती है कि यह भौतिक शरीर ही सब कुछ नहीं है। इन भौतिक तत्त्वों के संयोग के परे आत्मा है और उस आत्मा का लक्षण है चेतना।

चेतना को नकारा नहीं जा सकता है। बिना चेतना का शरीर मुरदा है। जैसे ही शरीर से चेतना बाहर निकल जाती है, मुँह बोल नहीं सकता है, आँख देख नहीं सकती है और कान सुन नहीं सकते हैं। इस बात को एक बच्चा भी समझ सकता

है। यह एक सत्य है कि शरीर के जीवित रहने के लिए चेतना नितान्त रूप से अनिवार्य है। यह चेतना क्या है? जैसे ताप अथवा धुआँ अग्नि का लक्षण है, वैसे ही चेतना आत्मा का लक्षण है। आत्मा की शक्ति चेतना के रूप में व्यक्त होती है। वस्तुतः चेतना सिद्ध करती है कि आत्मा विद्यमान है। यह केवल भगवद्गीता का दर्शन नहीं, बल्कि सारे वैदिक साहित्य का निष्कर्ष है।

शंकराचार्य के संप्रदाय के निर्विशेषवादी अनुयायी और भगवान् श्रीकृष्ण से चली आ रही शिष्य-परम्परा के वैष्णव लोग आत्मा के वास्तविक अस्तित्व का स्वीकार करते हैं, परंतु बौद्ध मत के दार्शनिक इसे नहीं मानते। बौद्ध मत वाले तर्क करते हैं कि भौतिक पदार्थों के मिश्रण की किसी विशेष अवस्था में चेतना उत्पन्न होती है। परन्तु इस तर्क का खण्डन इस तथ्य से हो जाता है कि भौतिक पदार्थ के सभी अवयव हमारे पास होने पर भी हम उनसे चेतना उत्पन्न नहीं कर सकते हैं। मरे हुए व्यक्ति के शरीर में सभी भौतिक तत्त्व उपस्थित हो सकते हैं, परन्तु हम उस व्यक्ति में चेतना पुनः जागृत नहीं कर सकते हैं। यह शरीर एक यंत्र की भाँति नहीं है। जब यंत्र का कोई पुरजा काम करना बंद कर देता है, तो हम उसे बदल सकते हैं और यंत्र फिर से काम करने लगता है, परन्तु जब शरीर काम करना बंद कर देता है और चेतना शरीर छोड़ देती है, तब टूटे हुए भाग को बदलकर चेतना को पुनः जागृत करने की कोई सम्भावना नहीं रहती। आत्मा शरीर से भिन्न है और

जब तक आत्मा है, तब तक शरीर जीवन्त है। परन्तु आत्मा की अनुपस्थिति में शरीर को जीवित रखने की कोई सम्भावना नहीं है।

चूँकि हम आत्मा को अपनी स्थूल इन्द्रियों से अनुभव नहीं कर पाते हैं, इसलिए हम उसके अस्तित्व को नकारते हैं। परन्तु वास्तव में ऐसी अनेक चीजें हैं, जिन्हें हम देख नहीं सकते हैं। हम हवा को नहीं देख सकते हैं, रेडियो की तरंगे या ध्वनि को भी नहीं देख सकते हैं और न ही हम अपनी कुंद आँखों से बहुत छोटे जीवाणुओं को देख सकते हैं, परंन्तु इस का अर्थ यह नहीं है कि वे होते ही नहीं। सूक्ष्मदर्शी यंत्र तथा अन्य यंत्रों की सहायता से हम ऐसी बहुत सारी चीजें देख सकते हैं, जिन्हें पहले हम अपनी अपूर्ण इन्द्रियों से न देख सकने के कारण नकारते थे। चूँकि आत्मा आकार में अणु समान है और उसे हम अपनी इन्द्रियों और यंत्रों से अभी तक नहीं देख पाए हैं, केवल इसी कारण से हमें यह निष्कर्ष नहीं निकाल लेना चाहिए कि आत्मा होता ही नहीं है। फिर भी, इसके लक्षणों और प्रभाव से हम उसकी अनुभूति कर सकते हैं।

भगवद्गीता में भगवान् कृष्ण कहते हैं कि हमारे सभी दुख शरीर के साथ हमारी गलत पहचान के कारण हैं।

मात्रास्पर्शास्तु कौन्तेय शीतोष्णसुखदुखदाः।
आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत॥

"हे कुन्तीपुत्र, गर्मी और सर्दी एवं सुख तथा दुख का

अस्थायी तौर पर प्रकट होना तथा कालक्रम में उनका अदृश्य होना शीत तथा ग्रीष्म ऋतुओं के आने-जाने के समान है। हे भरतवंशी, वे इन्द्रियबोध से उत्पन्न होते हैं और मनुष्य को चाहिए कि वह अविचल भाव से उनको सहन करना सीखे।" (भगवद्गीता २.१४)

ग्रीष्म ऋतु में पानी के स्पर्श से हमें आनन्द आता है, किन्तु शीत ऋतु में इसी पानी को हम छूना नहीं चाहते, क्योंकि वह बहुत ठण्डा होता है। दोनों स्थितियों में पानी वही है, परन्तु शरीर के सम्पर्क से वह आनन्ददायी या दुखदायी लगता है।

सुख और दुख के सारे अनुभव शरीर के कारण होते हैं। शरीर और मन किन्ही विशेष परिस्थितियों में सुख और दुख का अनुभव करते हैं। वास्तव में, हम सुख के लिए लालायित रहते हैं, क्योंकि सुख ही आत्मा का मूल स्वरूप है। आत्मा उन्हीं परमेश्वर का अभिन्न अंश है, जो कि *सच्चिदानन्द विग्रह* हैं—जो सनातन हैं, जिन्हें पूर्ण ज्ञान है और जो सदैव आनन्दमय हैं। वास्तव में कृष्ण नाम, जो कि सांप्रदायिक नहीं है, उसका अर्थ है, "सबसे बड़ा आनन्द।" *कृष्* का अर्थ है, सबसे बड़ा और *ण* का अर्थ है, आनन्द। कृष्ण भगवान् आनन्द के सार हैं और उनके अंश होने के कारण हम भी आनन्द के लिए लालायित रहते हैं। समुद्र के जल की एक बूँद में समुद्र के सभी गुण होते हैं। इसलिए पूर्ण परमेश्वर के लघु अंश होते हुए भी हममें परमेश्वर के वही शक्तिशाली गुण हैं।

आत्मा अणु के समान छोटा होने पर भी हमारे सम्पूर्ण शरीर को अनेक आश्चर्यजनक विधियों से कार्य करने के लिए चलायमान रखता है। इस संसार में हम इतने शहर, सड़कें, पुल, इमारतें, स्मारक और इतनी महान् सभ्यताएं देखते हैं, किन्तु उन्हें किसने बनाया है? ये सब वस्तुएँ सूक्ष्म चिंगारी, आत्मा ने बनाई हैं, जो शरीर में रहता है। यदि ऐसी आश्चर्यजनक चीजें छोटी सी आध्यात्मिक चिंगारी से बन सकती हैं, तो हम कल्पना भी नहीं कर सकते कि सर्वोच्च पूर्ण आत्मा, अर्थात् परमेश्वर क्या क्या बना सकते हैं। सूक्ष्म आत्मिक चिंगारी का स्वाभाविक लगाव उन्हीं गुणों से है, जो पूर्ण परमेश्वर में हैं—ज्ञान, आनन्द और शाश्वतता—परन्तु भौतिक शरीर के कारण आत्मा की ये इच्छाएँ पूरी नहीं होतीं और उसे निराशा प्राप्त होती है। आत्मा की इच्छा को पूरा करने की विधि के बारे में जानकारी भगवद्गीता में दी गयी है।

वर्तमान काल में हम एक अपूर्ण साधन के द्वारा ज्ञान, आनन्द और शाश्वतता प्राप्त करने की चेष्टा कर रहे हैं। वास्तव में, इन उद्देश्यों की ओर हमारी प्रगति भौतिक शरीर के कारण अवरूद्ध हो रही है, इसलिए हमें शरीर से परे अपने अस्तित्व साक्षात्कार पर पहुँचना है। सैद्धान्तिक ज्ञान कि हम ये शरीर नहीं हैं, कुछ काम नहीं आएगा। हमें अपने आपको शरीर से अलग, उसके स्वामी के रूप में रखना होगा, सेवक के रूप में नहीं। यदि हम भलीभाँति जानते हैं कि कार कैसे चलाई जाती है, तो वह हमें अच्छी सेवा देगी लेकिन यदि हम नहीं जानते,

तो यह हमारे लिए खतरनाक स्थिति होगी।

शरीर इन्द्रियों से बना है और इन्द्रियाँ सदैव अपने विषयों की भूखी रहती हैं। जब आँख किसी सुन्दर व्यक्ति को देखती है तो वह हमसे कहती है, "अरे वहाँ एक सुन्दर लड़की है, सुन्दर लड़का है, वहाँ चलकर देखो।" कान हमसे कहते हैं, "अरे, वहाँ बहुत अच्छा संगीत हो रहा है, उसे सुनने चलो।" जीभ कहती है, "अरे, वहाँ स्वादिष्ट भोजन का अच्छा भोजनालय है, वहाँ चलो।" इस प्रकार इन्द्रियाँ हमें एक स्थान से दूसरे स्थान की ओर घसीट रही हैं और इसके कारण हम परेशान हैं।

इन्द्रियाणां हि चरतां यन्मनोऽनुविधीयते।
तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नावमिवाम्भसि॥

"जिस प्रकार पानी में तैरती नाव को प्रचण्ड वायु दूर बहा ले जाती है, उसी प्रकार इन्द्रियों में से कोई एक जिस पर मन केन्द्रित रहता है, मनुष्य की बुद्धि को बहा ले जाती है।" (भगवद्गीता २.६७)

हम अपनी इन्द्रियों को कैसे नियंत्रित करें, यह सीखना अनिवार्य है। *गोस्वामी* उपाधि उसे दी जाती है, जिसने यह सीख लिया हो कि इन्द्रियों के स्वामी कैसे बनें। *गो* का अर्थ है इन्द्रियाँ और *स्वामी* का अर्थ है वश में करने वाला; इसलिए जो इन्द्रियों को वश में कर सकता है, वही *गोस्वामी* माना जाता है। कृष्ण भगवान् कहते हैं कि जो अपनी पहचान भ्रामक भौतिक शरीर से रखता है, वह अपने सही स्वरूप,

आत्मा में स्थित नहीं हो सकता है। शारीरिक आनन्द चंचल और प्रमादी है और इसके क्षणिक स्वभाव के कारण हम वास्तव में इसका आनन्द नहीं ले सकते हैं। वास्तविक आनन्द आत्मा का है, शरीर का नहीं है। हमें अपने जीवन को इस तरह मोड़ना है कि हम शारीरिक आनन्द के कारण पथभ्रष्ट न हो जाएँ। यदि किसी प्रकार हम पथ से विचलित हो गये, तो हमारे लिए अपनी चेतना को शरीर से परे वास्तविक स्वरूप में स्थापित करना सम्भव नहीं है।

भोगैश्वर्यप्रसक्तानां तयापहृतचेतसाम्।
व्यवसायात्मिका बुद्धिः समाधौ न विधीयते॥
त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन।
निर्द्वन्द्वो नित्यसत्त्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान्॥

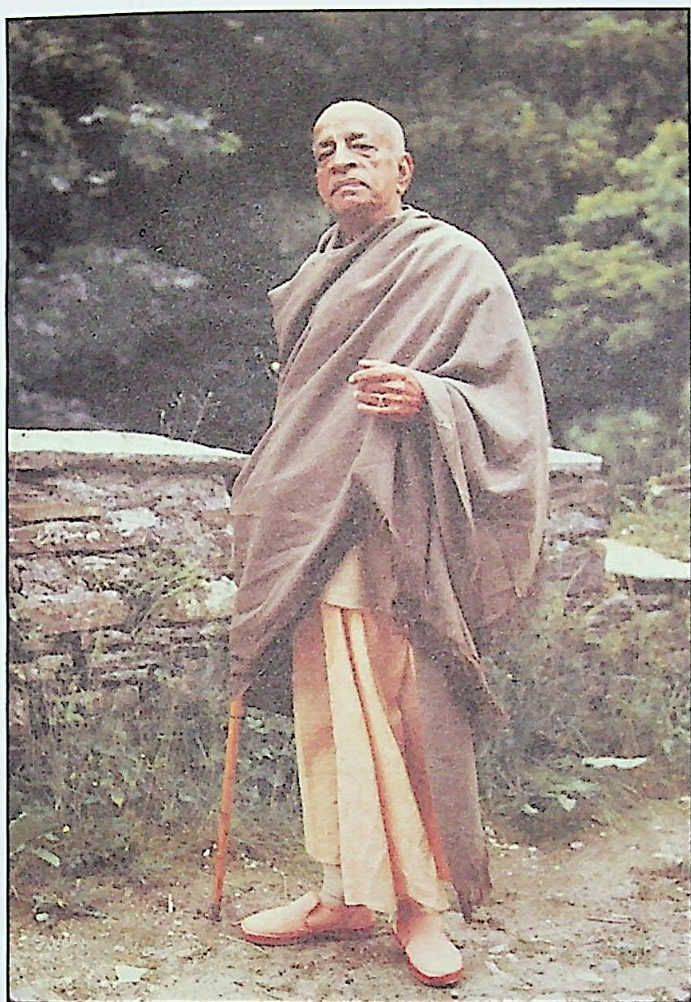
"जो लोग इन्द्रियभोग तथा भौतिक ऐश्वर्य के प्रति अत्यधिक आसक्त होने के कारण ऐसी वस्तुओं से मोहग्रस्त हो जाते हैं, उनके मन में भगवान् के प्रति भक्ति का दृढ़ संकल्प नहीं हो पाता। वेदों में मुख्यतया प्रकृति के तीनों गुणों का वर्णन हुआ है। हे अर्जुन, इन तीनों गुणों से ऊपर उठो। समस्त द्वन्द्वों से और लाभ तथा सुरक्षा की सारी चिन्ताओं से मुक्त होकर आत्म-परायण बनो।" (भगवद्गीता २.४४-४५)

वेद शब्द का अर्थ है, "ज्ञान की पुस्तक।" ज्ञान की अनेक पुस्तकें हैं जो कि देश, जनमानस, वातावरण आदि के अनुसार बदलती रहती हैं। भारत में ज्ञान की पुस्तकों का तात्पर्य वेदों से होता है। पाश्चात्य देशों में वे पुस्तकें *ओल्ड*

टेस्टामेन्ट तथा *न्यू टेस्टामेन्ट* कहलाती हैं। मुसलमान लोग कुरान को स्वीकार करते हैं। ज्ञान की इन सब पुस्तकों का उद्देश्य क्या है ? ये हमें शुद्ध आत्मा के रूप में अपनी स्थिति को समझने में प्रशिक्षित करने के लिए हैं। इनका उद्देश्य कुछ नियमों और विधियों से शारीरिक क्रियाओं को नियंत्रित करना है और ये विधियाँ और नियम नैतिकता के सिद्धान्त कहलाते हैं। उदाहरण के लिए, हमारे जीवन को नियमित करने के लिए बाइबल में दस निर्देश दिए गए हैं। सर्वोच्च सिद्धि पाने के लिए शरीर को संयम में रखना अनिवार्य है; बिना नियामक सिद्धान्तों के जीवन में सिद्धि पाना सम्भव नहीं है। भिन्न भिन्न देशों अथवा भिन्न भिन्न शास्त्रों में नियामक सिद्धान्तो में भेद हो सकते है, किन्तु इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता क्योंकि वे देश, काल और जनता की रुचियों के अनुसार ही बनाये जाते हैं। परन्तु नियमन लागू करने का सिद्धान्त वही रहता है। इसी प्रकार सरकार भी नागरिकों द्वारा पालन किए जाने के लिए कुछ विशेष नियम बनाती है। बिना नियामक सिद्धान्त के, सरकार या समाज की प्रगति की कोई सम्भावना नहीं है। उपरोक्त श्लोक में भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि वेदों के नियामक सिद्धान्त भौतिक प्रकृति के तीनों गुणों सत्त्व, रज और तम को नियंत्रित करने के लिए हैं (*त्रैगुण्य विषया वेदा*)। तथापि भगवान् कृष्ण अर्जुन को परामर्श देते हैं कि वह अपने आप को शुद्ध आत्मा के रूप में अपनी स्वाभाविक स्थिति में स्थापित करे, जो कि भौतिक प्रकृति के द्वन्द्वों से परे है।

जैसे हमने पहले भी इंगित किया है, ये द्वन्द्व जैसे जाड़ा और गर्मी, सुख और दुख, इन्द्रियों के उनके विषयों के साथ सम्पर्क से उत्पन्न होते हैं। दूसरे शब्दों में, ये शरीर के साथ हमारी पहचान के कारण उत्पन्न होते हैं। भगवान् कृष्ण बतलाते हैं कि जो लोग भौतिक सुख और शक्ति में लिप्त होते हैं, वे वेदों की उक्तियों के धोखे में आ जाते हैं, जिनमें यज्ञों और नियमित कर्मों से स्वर्गलोक के आनन्द का प्रलोभन दिया गया है। आनन्द लेना हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है, क्योंकि यह आत्मा का गुण है, किन्तु आत्मा सांसारिक चीजों को भोगने का प्रयास करता है और यही गलती है।

हर कोई आनन्द उठाने के लिए भौतिक विषयों की तरफ मुड़ जाता है और जितना सम्भव हो सकता है उतना ज्ञान एकत्रित करता है। कोई रसायन शास्त्री, भौतिक शास्त्री, राजनितीज्ञ या कलाकार इत्यादि बन रहा है। हर कोई व्यक्ति हर चीज के विषय में कुछ न कुछ तो जानता है अथवा कुछ चीजों के बारे में सब कुछ जानता है और सामान्य रूप से इसीको ज्ञान कहा जाता है। परन्तु जैसे ही हम यह शरीर को छोड़ते हैं, हमारा यह सभी ज्ञान नष्ट हो जाता है। पिछले जन्म में कोई व्यक्ति महान् ज्ञानी हुआ होगा, परन्तु इस जीवन में उसे फिर से विद्यालय जाकर शुरुआत करनी पड़ती है और प्रारम्भ से पढ़ना-लिखना सीखना पड़ता है। पिछले जन्म में हमने जो भी ज्ञान प्राप्त किया था, उसे हम इस जन्म में भूल जाते हैं। स्थिति यह है कि हम वास्तव में शाश्वत ज्ञान खोज



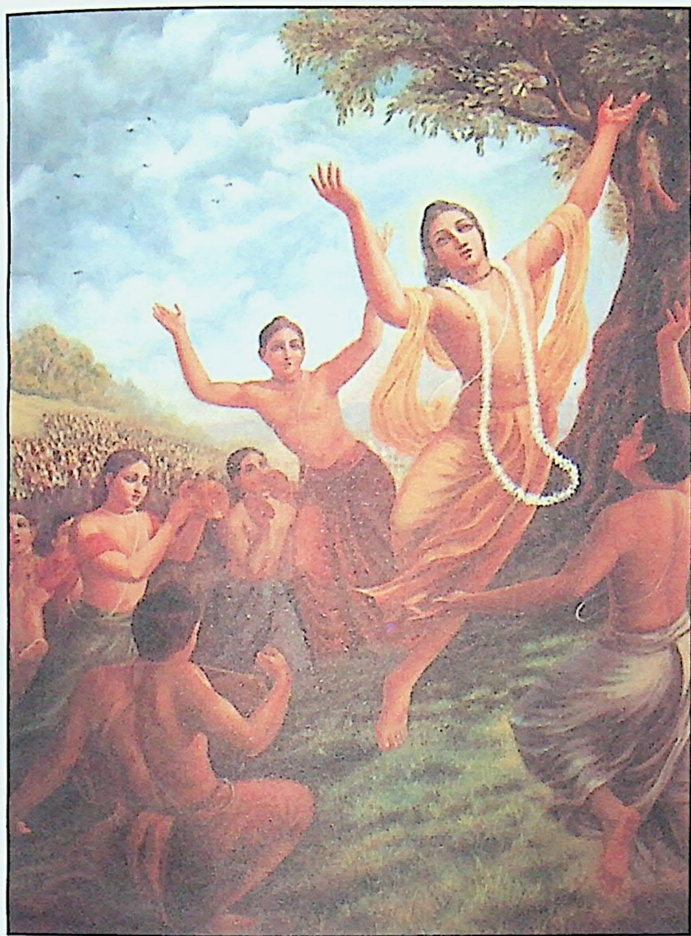
कृष्णकृपामूर्ति

श्री श्रीमद् ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद

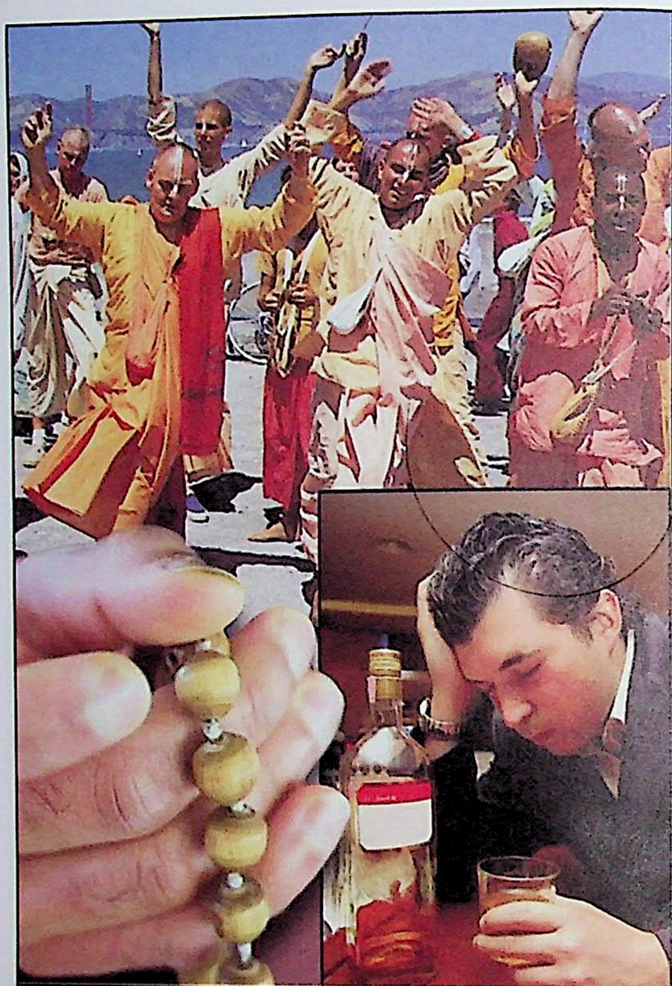
संस्थापकाचार्य : अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ



जिस प्रकार पानी में तैरती नाव को प्रचण्ड वायु दूर बहा ले जाती है, उसी प्रकार इन्द्रियों में से कोई एक जिस पर मन केन्द्रित रहता है, मनुष्य की बुद्धि को हर लेती है।" (पृष्ठ ७)



भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु ने कलियुग की पतित मानव जाति के उद्धार के लिए हरे कृष्ण महामन्त्र प्रदान किया है : **हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे॥** (पृष्ठ १५)



भगवान् कृष्ण के भक्त भक्तिमय सेवा के कार्यों द्वारा वास्तविक आनन्द का अनुभव करते हैं, जब कि आधुनिक सभ्यता में भौतिकतावादी मनुष्य नशा इत्यादि के द्वारा कृत्रिम रूप से आनन्द लेने का प्रयास करते हैं। (पृष्ठ ३८)

रहे हैं, परन्तु वह इस भौतिक शरीर से प्राप्त नहीं किया जा सकता है। हम सब इन शरीरों के माध्यम से आनन्द खोज रहे हैं, परन्तु शारीरिक आनन्द हमारा वास्तविक आनन्द नहीं है। यह कृत्रिम है। हमें यह समझना होगा कि यदि हम इस कृत्रिम आनन्द में लगे रहना चाहते हैं, तो हम अपने सनातन आनन्द की स्थिति को नहीं पा सकेंगे।

इस शरीर को बीमारी की स्थिति समझना चाहिए। बीमार व्यक्ति ठीक से आनन्द नहीं उठा सकता है। उदाहरण के लिए, पीलिया से पीड़ित व्यक्ति को चीनी कड़वी लगेगी, परन्तु स्वस्थ व्यक्ति उसके मीठेपन का स्वाद ले सकता है। दोनों स्थितियों में चीनी तो वही है, लेकिन हमें अपनी स्थिति के अनुसार इसके स्वाद अलग लगते हैं। जब तक हम इस देहात्मभाव की बीमार अवस्था से ठीक नहीं हो जाते, हम आध्यात्मिक जीवन के मीठेपन का आस्वाद नहीं ले सकते। वास्तव में, वह हमें स्वाद में कड़वा लगेगा और साथ ही साथ इस भौतिक जीवन के आनन्द को बढ़ाने से हम अपनी बीमार स्थिति को और भी जटिल बनाते जाएँगे। टाइफाइड का रोगी ठोस भोजन नहीं खा सकता है और यदि कोई उसके आनन्द के लिए उसे ऐसा भोजन दे और वह उसे खा ले, तो वह अपनी बीमारी और अधिक जटिल बना रहा है और अपने जीवन को संकट में ड़ाल रहा है। यदि हम वास्तव में भौतिक अस्तित्व के दुखों से मुक्ति पाना चाहते हैं, तो हमें शरीर की आवश्यकताएँ और उसके सुख कम करने होंगे।

वास्तव में, भौतिक आनन्द तो रंच मात्र भी आनन्द नहीं है। वास्तविक आनन्द कभी समाप्त नहीं होता है। *महाभारत* में एक श्लोक है—*रमन्ते योगिनोऽनन्ते*—अर्थात् योगीजन (*योगिनो*) जो आत्मज्ञान के स्तर तक प्रगति करने की चेष्टा कर रहे हैं, वास्तव में आनन्द ले रहे हैं (*रमन्ते*), किन्तु उनका वह आनन्द अनन्त है (*अनन्ते*)—कभी अन्त न होने वाला। ऐसा इसलिए है कि उनका आनन्द परम भोक्ता (राम) कृष्ण के सम्बन्ध में है। भगवान् श्रीकृष्ण वास्तविक भोक्ता हैं और भगवद्गीता इसकी पुष्टि करती है :

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम्।
सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति॥

"मुझे समस्त यज्ञों तथा तपस्याओं का परम भोक्ता, समस्त लोकों तथा देवताओं का परमेश्वर एवं समस्त जीवों का उपकारी एवं हितैषी जानकर संत-महात्मा भौतिक दुखों की पीड़ा से शान्ति प्राप्त करते हैं।" (भगवद्गीता ५.२९)

भोग का अर्थ है आनन्द और हमारा आनन्द अपनी स्थिति को भोग्य के रूप में समझने से आता है। वास्तविक भोक्ता परम भगवान् हैं और हम उनके द्वारा भोगे जाते हैं।

इस सम्बन्ध का एक उदाहरण भौतिक संसार में पति और पत्नी के बीच पाया जा सकता है—पति भोक्ता है अर्थात् *पुरुष* है और पत्नी भोग्या अर्थात् *प्रकृति* है। *प्री* शब्द का अर्थ है स्त्री। *पुरुष* या आत्मा भोक्ता है, और *प्रकृति* भोग का विषय है। किन्तु आनन्द पति और पत्नी दोनों ही लेते हैं। जब वास्तव

में आनन्द होता है, तब ऐसी कोई भिन्नता नहीं रहती कि पति अधिक आनन्द ले रहा है या पत्नी कम आनन्द ले रही है। यद्यपि पुरुष भोगनेवाला है और स्त्री भोग्या है, परन्तु जब आनन्द आता है तब कोई भिन्नता नहीं रहती है। व्यापक दृष्टि से देखने से कोई भी जीव भोक्ता नहीं है।

भगवान् अनेक अंशों में विस्तारित हुए और हम उन्हीं में से एक अंश हैं। भगवान् एक और अद्वितीय हैं, परन्तु उन्होंने आनन्द की अनुभूति के लिए अनेक रूपों में विस्तारित होने की इच्छा की। हमें अनुभव है कि एक कमरे में अकेले बैठे, अपने आप से बातें करने से बहुत कम या कुछ भी आनन्द नहीं मिलता। लेकिन, यदि कमरे में पाँच व्यक्ति उपस्थित हों, तो हमारा आनन्द बढ़ जाता है और यदि हम अनेक व्यक्तियों के समक्ष भगवान् कृष्ण की चर्चा कर सकें, तो हमारा आनन्द और भी बढ़ जाता है। आनन्द का अर्थ है विविधता। भगवान् अपने आनन्द के लिए अनेक में विस्तारित हुए और इस प्रकार हमारी स्थिति उन्हें आनन्द देने वाले की है। यही हमारा वैधानिक स्वरूप है और यही हमारे सृजन होने का उद्देश्य है। आनन्द का भोक्ता और भोग्य दोनों ही चेतनायुक्त हैं, परन्तु भोग्य की चेतना भोक्ता की चेतना के अधीनस्थ है। यद्यपि कृष्ण भोक्ता हैं और हम भोग्य हैं, तथापि इस आनन्द में प्रत्येक व्यक्ति बराबरी से सहभागी बन सकता है। हमारा आनन्द तब पूर्ण बन सकता है, जब हम भगवान् के आनन्द में सहयोग दें। हमारे लिए शारीरिक स्तर पर अलग से आनन्द

लेने की कोई सम्भावना नहीं है। सम्पूर्ण भगवद्गीता में स्थूल शारीरिक स्तर पर भौतिक आनन्द के भोग को निरुत्साहित किया गया है।

मात्रास्पर्शास्तु कौन्तेय शीतोष्णसुखदुखदा:।
आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत॥

"हे कुन्तीपुत्र, गर्मी तथा सर्दी एवं सुख तथा दुख का अस्थायी रूप से प्रकट होना और कालक्रम में उनका अदृश्य होना शीत तथा ग्रीष्म की ऋतुओं के आने-जाने के समान है। हे भरतवंशी, ये इन्द्रियबोध से उत्पन्न होते हैं और मनुष्य को चाहिए कि अविचल भाव से उनको सहन करना सीखे।" (भगवद्गीता २.१४)

इस प्रकृति के तीन गुणों की प्रतिक्रिया से यह स्थूल भौतिक शरीर उत्पन्न हुआ है और इसका विनाश निश्चित है।

अन्तवन्त इमे देहा नित्यस्योक्ता: शरीरिण:।
अनाशिनोऽप्रमेयस्य तस्माद्युध्यस्व भारत॥

"अविनाशी, अप्रमेय तथा शाश्वत जीव का केवल भौतिक शरीर ही नष्ट होता है। अत: हे भरतवंशी, युद्ध करो।" (भगवद्गीता २.१८)

इसलिए भगवान् कृष्ण हमें देहात्मबुद्धि से ऊपर उठकर अपना वास्तविक आध्यात्मिक जीवन प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहित करते हैं।

गुणानेतानतीत्य त्रीन्देही देहसमुद्भवान्।
जन्ममृत्युजरादुखैर्विमुक्तोऽमृतमश्नुते॥

"जब देहधारी जीव भौतिक शरीर से सम्बद्ध इन तीनों गुणों (सत्त्व, रजो तथा तमोगुण) को लाँघने में समर्थ हो जाता है, तब वह जन्म, मृत्यु, बुढ़ापा तथा उनसे होने वाले कष्टों से मुक्त हो सकता है और इसी जीवन में अमृत भोग सकता है।" (भगवद्गीता १४.२०)

हमें अपने आप को तीनों गुणों से ऊपर शुद्ध *ब्रह्मभूत*, आध्यात्मिक स्तर में स्थित करने के लिए कृष्णभावनामृत की विधि स्वीकार करनी होगी। श्रीचैतन्य महाप्रभु का उपहार, यह महामंत्र, **हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण, हरे हरे / हरे राम, हरे राम, राम राम, हरे हरे** का कीर्तन इस विधि को सुगम बना देता है। यह विधि भक्तियोग या मंत्रयोग कहलाती है और सर्वश्रेष्ठ योगी इस विधि का उपयोग करते हैं। अध्यात्मवादी किस प्रकार जन्म-मृत्यु से परे, भौतिक शरीर से परे अपनी पहचान का अनुभव करते हैं और अपने आपको इस भौतिक ब्रह्माण्ड से आध्यात्मिक लोकों में स्थानान्तरित करते हैं, वह अगले प्रकरणों का विषय है।



२

मृत्यु के समय उन्नति

अध्यात्मवादी अनेक प्रकार के होते हैं, जिन को योगी कहा जाता है—हठयोगी, ज्ञानयोगी, ध्यानयोगी और भक्तियोगी—ये सब आध्यात्मिक जगत में स्थानान्तरित होने के लिए योग्य होते हैं। *योग* शब्द का अर्थ है, "जुड़ना" और योग विधियाँ हमारा सम्बन्ध आध्यात्मिक जगत से स्थापित करने के लिए निर्मित हैं। जैसाकि पिछले प्रकरण में बताया गया है, मौलिक रूप से हम सब भगवान् से जुड़े हुए हैं, परन्तु अभी हम भौतिक मलिनता से प्रभावित हो चुके हैं। प्रक्रिया यह है कि हमें आध्यात्मिक जगत में वापस जाना है और जोड़ने की यही प्रक्रिया योग कहलाती है। योग शब्द का दूसरा अर्थ धन चिह्न (+) है। वर्तमान काल में हम भगवान् या परम सत्य से रहित (–) हैं। परंतु जब हम कृष्ण अर्थात् परमेश्वर को अपने जीवन से जोड़ लेते हैं, तब हमारा यह मनुष्य जीवन पूर्ण हो जाता है।

मृत्यु के समय हमें पूर्णता की उस प्रक्रिया को पूरा करना होता है। अपने जीवनकाल के दौरान हमें पूर्णता की ओर

अग्रसर होने की विधि का अभ्यास करना होता है, जिससे कि मृत्यु के समय जब हमें यह भौतिक शरीर छोड़ना पड़े, तब उस पूर्णता को हम प्राप्त कर सकें।

प्रयाणकाले मनसाचलेन
भक्त्या युक्तो योगबलेन चैव।
भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक्
स तं परं पुरुषमुपैति दिव्यम्॥

"मृत्यु के समय जो व्यक्ति अपने प्राण को भौहों के मध्य स्थिर कर लेता है और अविचलित मन से पूर्णभक्ति के साथ परमेश्वर के स्मरण में अपने को लगाता है, वह निश्चित रूप से भगवान् को प्राप्त होता है।" (भगवद्गीता ८.१०)

जिस प्रकार विद्यार्थी किसी विषय को चार या पाँच साल तक पढ़ता है और फिर परीक्षा में बैठता है और अन्त में उपाधि प्राप्त करता है, उसी प्रकार, जीवन के विषय में यदि हम मृत्यु काल की परीक्षा के लिए अपने जीवनकाल में ही अभ्यास करें और हम परीक्षा में सफल हो जाएँ, तो हमें आध्यात्मिक जगत में भेज दिया जाता है। हमारे सम्पूर्ण जीवन की परीक्षा मृत्यु के समय होती है।

यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः॥

"हे कुन्तीपुत्र, शरीर त्यागते समय मनुष्य जिस भाव का स्मरण करता है, निश्चित रूप से वह उसी भाव को प्राप्त करता है।" (भगवद्गीता ८.६)

बंगाली में एक कहावत है कि पूर्णता के लिए मनुष्य जो कुछ करता है, उसकी परीक्षा मृत्यु के समय होती है। भगवद्गीता में भगवान् कृष्ण बतलाते हैं कि शरीर छोड़ते समय हमको क्या करना चाहिए। ध्यानयोगी के लिए भगवान् कृष्ण निम्नलिखित श्लोक बताते हैं :

यदक्षरं वेदविदो वदन्ति
विशन्ति यद्यतयो वीतरागाः।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति
तत्ते पदं संग्रहेण प्रवक्ष्ये ॥
सर्वद्वाराणि संयम्य मनो हृदि निरुध्य च।
मूर्ध्न्याधायात्मनः प्राणमास्थितो योगधारणाम् ॥

"वेदों के ज्ञाता जो पुरुष, जो ॐकार का उच्चारण करते हैं और जो संन्यास आश्रम के बड़े-बड़े मुनि हैं, वे ब्रह्म में प्रवेश करते हैं। ऐसी सिद्धि की इच्छा करने वाले ब्रह्मचर्यव्रत का अभ्यास करते हैं। अब मैं तुम्हें वह विधि बताऊँगा, जिससे व्यक्ति मुक्ति-लाभ कर सकता है। समस्त ऐन्द्रिय क्रियाओं से विरक्ति की स्थिति को योग कहा जाता है। इन्द्रियों के समस्त द्वारों को बन्द करके तथा मन को हृदय में और प्राण को सिर के ऊपर केन्द्रित करके मनुष्य अपने को योग में स्थापित करता है।" (भगवद्गीता ८.११-१२)

योग विधि में इस अभ्यास को प्रत्याहार कहते हैं जिस का अर्थ है, 'पूर्णतया विपरीत।' यद्यपि जीवनकाल में आँखें सांसारिक सौंदर्य देखने में लगी रहती हैं, परन्तु मनुष्य को

मृत्युकाल में इन्द्रियों को उनके विषयों से हटाकर आन्तरिक सौंदर्य देखना होता है। इसी प्रकार कान भी इस संसार में अनेक प्रकार की ध्वनियाँ सुनने के आदी होते हैं, परन्तु मृत्यु के समय मनुष्य को अन्दर से परम शब्द ॐकार को सुनना होता है।

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम्॥

"इस योगाभ्यास में स्थित होकर तथा अक्षरों के परम संयोग अर्थात् ॐकार का उच्चारण करते हुए यदि कोई पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का चिन्तन करता है और अपने शरीर का त्याग करता है, तो वह निश्चित रूप से आध्यात्मिक लोकों को जाता है।" (भगवद्गीता ८.१३)

इस प्रकार सभी इन्द्रियों को बाहरी क्रियाओं से रोकना होता है और भगवान् के विष्णुमूर्ति रूप पर केन्द्रित करना होता है। मन बहुत चंचल है परन्तु इसको अपने हृदय में स्थित भगवान् पर स्थिर करना होता है। जब मन हृदय के अन्दर स्थिर हो जाता है और प्राणवायु सिर के उच्चस्थ भाग पर स्थानान्तरित हो जाती है, तब मनुष्य योग में सिद्धि पा सकता है।

इस बिन्दु पर योगी निश्चित करता है कि उसे कहाँ जाना है। इस भौतिक ब्रह्माण्ड में अनगिनत ग्रह हैं और इस ब्रह्माण्ड के परे आध्यात्मिक विश्व है। योगियों को वैदिक साहित्य से इन सभी स्थानों की जानकारी होती है। जिस प्रकार कोई

अमरीका जाने से पहले पुस्तकें पढ़कर कुछ जानकारी पा सकता है कि अमरीका किस प्रकार का देश है, इसी प्रकार मनुष्य को आध्यात्मिक ग्रहों का ज्ञान भी वैदिक साहित्य पढ़कर मिल सकता है। योगी इन सब स्थानों के विषय में जानते हैं और बिना किसी अंतरिक्ष यान की सहायता के वे जिस ग्रह पर जाना चाहें, जा सकते हैं। यांत्रिक साधनों द्वारा अन्तरिक्ष यात्रा, दूसरे ग्रहों में उत्थान के लिए मान्य विधि नहीं है। शायद बहुत समय तक प्रयत्न करने और बहुत सारा धन व्यय करने के बाद, अंतरिक्ष यानों या अन्तरिक्ष पोशाक जैसे इन भौतिक साधनों से भले ही कुछ व्यक्ति अन्य ग्रहों में जा सकें, परन्तु यह बहुत ही कठिन और अव्यावहारिक विधि है। किसी भी दशा में, इस भौतिक ब्रह्माण्ड के उस पार यांत्रिक साधनों की सहायता से जा पाना सम्भव नहीं है।

उच्च लोकों में जाने की सामान्य स्वीकृत विधि ध्यानयोग या ज्ञानयोग का अभ्यास है। तथापि भक्तियोग पद्धति का अभ्यास किसी भी भौतिक ग्रह में जाने के लिए नहीं होता है, क्योंकि जो परम भगवान् कृष्ण के सेवक हैं, वे इस भौतिक ब्रह्माण्ड के किसी भी ग्रह पर जाने की इच्छा नहीं रखते हैं। वे जानते हैं कि वे यदि भौतिक आकाश के किसी भी लोक में प्रवेश करेंगे तो जन्म, मृत्यु, जरा तथा व्याधि के चार सिद्धान्त वे वहाँ भी पाएँगे। उच्च लोकों में जीवन की अवधि इस पृथ्वी की अवधि से लम्बी हो सकती है, परन्तु मृत्यु वहाँ पर भी है। 'भौतिक ब्रह्माण्ड' से हमारा तात्पर्य उन ग्रहों से है

जहाँ जन्म, मृत्यु, जरा और व्याधि होते हैं और 'आध्यात्मिक ब्रह्माण्ड' से हमारा तात्पर्य उन ग्रहों से है जहाँ जन्म, मृत्यु, जरा और व्याधि नहीं होते हैं। जो बुद्धिमान हैं, वे स्वयं को इस भौतिक ब्रह्माण्ड के किसी भी ग्रह में ले जाने की चेष्टा नहीं करते।

यदि कोई उच्च लोकों में यांत्रिक विधि से प्रवेश करने का प्रयत्न करता है, तो उसकी तत्काल मृत्यु निश्चित है, क्योंकि यह शरीर वातावरण के इतने बड़े उग्र परिर्वतन को सह नहीं सकता है। परन्तु यदि कोई योग विधि से उच्च लोकों में प्रवेश करने का प्रयास करे, तो उसे प्रवेश करने के लिए उपयुक्त शरीर प्राप्त हो जाएगा। इस पृथ्वी पर भी हम ऐसा प्रदर्शित होते देख सकते हैं, क्योंकि हमें पता है कि हमारे लिए समुद्र में जलमय वातावरण में रहना सम्भव नहीं है और न ही जलचरों के लिए धरती पर रहना सम्भव है। इस प्रकार हम समझते हैं कि जैसे इस पृथ्वी पर भी जीव को किसी स्थान विशेष पर रहने के लिए एक विशेष प्रकार का शरीर चाहिए, वैसे ही अन्य ग्रहों में रहने के लिए भी किसी विशिष्ट प्रकार का शरीर चाहिए। उच्चतर ग्रहों में पृथ्वी की अपेक्षा शरीर अधिक समय तक जीवित रहता है, क्योंकि उच्चतर ग्रहों का एक दिन पृथ्वी के छः महीनों के बराबर होता है। इस प्रकार का वर्णन वेदों में है कि जो लोग उच्च लोकों में रहते हैं, वे इस पृथ्वी के दस हजार वर्षों से भी अधिक समय तक जीवित रहते हैं। तथापि इतनी लम्बी आयु के बाद भी मृत्यु हर एक

की प्रतीक्षा करती है। चाहे कोई बीस हजार या पचास हजार या लाखों वर्ष जीवित रहे, फिर भी इस भौतिक संसार में वर्षों की गिनती होती रहती है और मृत्यु आती ही है। मृत्यु के इस चंगुल से हम कैसे बच सकते हैं ? यह शिक्षा भगवद्गीता में दी गई है।

न जायते म्रियते वा कदाचिन्
नायं भूत्वा भविता वा न भूयः ।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो
न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥

"आत्मा के लिए किसी भी काल में न तो जन्म है न मृत्यु। एक बार अस्तित्व में आने पर वह कभी नष्ट नहीं होता। वह अजन्मा, नित्य, शाश्वत, अमर्त्य तथा पुरातन है। शरीर के मारे जाने पर भी वह मारा नहीं जाता।" (भगवद्गीता २.२०)

हम आत्मा हैं और इसलिए सनातन हैं। तो फिर हम अपने आप को जन्म और मृत्यु के अधीन क्यों होने देते हैं ? जो यह प्रश्न पूछता है, उसे बुद्धिमान माना जाना चाहिए। जो लोग कृष्णभावनाभावित हैं, वे बहुत बुद्धिमान हैं, क्योंकि वे उन ग्रहों में जाने के इच्छुक नहीं हैं, जहाँ मृत्यु होती है। वे भगवान् के समान शरीर पाने के लिए लम्बी अवधि वाला जीवन भी स्वीकार नहीं करेंगे। *ईश्वरः परमः कृष्णः सत्-चित्-आनन्द विग्रहः।* *सत्* का अर्थ है सनातन, *चित्* का अर्थ है ज्ञान से परिपूर्ण और *आनन्द* का अर्थ है सुख से परिपूर्ण। कृष्ण सम्पूर्ण आनन्द के सागर हैं। यदि हम अपने आपको इस शरीर

से आध्यात्मिक लोक—कृष्णलोक (कृष्ण का ग्रह) या किसी और आध्यात्मिक ग्रह—में स्थानान्तरित करें, तो हमें उसी प्रकार का *सत्-चित्-आनन्द* शरीर मिलेगा। इसलिए जो कृष्णभावनाभावित हैं, उनका उद्देश्य उनसे भिन्न है, जो इस भौतिक संसार के उच्च ग्रहों में उन्नति करने का प्रयास कर रहे हैं।

मनुष्य का आत्मा सूक्ष्म आध्यात्मिक चिंगारी है। योग की सिद्धि इस बात पर निर्भर करती है कि इस आध्यात्मिक चिंगारी को सिर के ऊपरी भाग में ले जाया जाए। इस स्तर को प्राप्त करने के बाद योगी अपने आपको अपनी इच्छा के अनुसार इस भौतिक संसार के किसी भी लोक में ले जा सकता है। यदि योगी की जिज्ञासा यह जानने की है कि चन्द्रमा किस प्रकार का है, तो वह वहाँ जा सकता है; यदि वह उच्चतर लोकों में जाने का इच्छुक हो, तो वह वहाँ भी उसी प्रकार जा सकता है जैसे यात्री न्यूयॉर्क, कैनाडा या इस पृथ्वी के अन्य नगरों को जाते हैं। इस पृथ्वी पर कहीं भी जाने के लिए प्रवेश पत्र और आयात-कर की समान विधि लागू मिलेगी। इसी प्रकार सभी भौतिक ग्रहों में भी जन्म, मृत्यु, वृद्धावस्था और बीमारी के सिद्धान्त कार्यशील मिलेंगे।

ओम् इत्येकाक्षरं ब्रह्म—मृत्यु के समय योगी ॐ शब्द का उच्चारण कर सकता है। *ओम्* दिव्य शब्द ध्वनि *ॐकार* का संक्षिप्त रूप है। यदि योगी इस ध्वनि का उच्चारण कर सकता है और साथ ही उसी समय कृष्ण या विष्णु भगवान् का स्मरण

(*मामनुस्मरन्*) कर सकता है, तो वह सबसे ऊँचा लक्ष्य प्राप्त करता है। योग की प्रक्रिया मन को विष्णु के ध्यान में केन्द्रित करना है। निर्विशेषवादी भगवान् के किसी रूप की कल्पना करते हैं परन्तु वैष्णवजन इसकी कल्पना नहीं करते हैं बल्कि वास्तव में देखते हैं। चाहे कोई भगवान् की कल्पना करे या वास्तव में उन्हें देखे, हर किसी को कृष्ण के साकार रूप पर मन को केन्द्रित करना होता है।

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः॥

"हे पार्थ, जो अनन्य भाव से निरन्तर मेरा स्मरण करता है, उसके लिए मैं सुलभ हूँ, क्योंकि वह निरन्तर मेरी ही भक्ति में लगा रहता है।" (भगवद्गीता ८.१४)

जो अस्थायी जीवन, अस्थायी सुख और अस्थायी सुविधाओं से सन्तुष्ट हैं, उन्हें बुद्धिमान नहीं माना जा सकता है, कम से कम भगवद्गीता के मतानुसार तो नहीं। भगवद्-गीता के अनुसार जिनकी बुद्धि बहुत छोटी है, वे अस्थाई चीजों में रुचि रखते हैं। हम सनातन हैं, तो हम अस्थाई चीजों में रुचि क्यों रखें? कोई भी व्यक्ति अस्थाई स्थिति नहीं चाहता है। यदि हम किसी किराये के मकान में रहते हैं और मकान मालिक मकान खाली करने को कहे, तो हमें दुख होता है, परन्तु यदि हम उससे अच्छे मकान में चले जाते हैं, तो हमें शोक नहीं होता है। यह हमारा स्वभाव है, क्योंकि हम सनातन हैं, इसलिए हम सनातन निवासस्थान चाहते हैं। हम मरना नहीं

चाहते हैं क्योंकि वास्तव में हम सनातन हैं। हम वृद्ध और बीमार होना भी नहीं चाहते हैं, क्योंकि ये सब बाहरी और अस्थाई स्थितियाँ हैं। यद्यपि हम ज्वर से पीड़ित होने के लिए नहीं बने हैं, फिर भी कभी कभी ज्वर आ जाता है और हमें ठीक होने के लिए सावधानियाँ अपनानी पड़ती हैं और चिकित्सा करवानी पड़ती है। चारों प्रकार के दुख ज्वर जैसे ही हैं और ये सब इस भौतिक शरीर के कारण हैं। यदि किसी प्रकार हम इस भौतिक शरीर से बाहर निकल पाएँ, तो हम सभी दुखों से छुटकारा पा सकते हैं, जो इस शरीर के साथ जुड़े हुए हैं।

निर्विशेषवादियों को इस अस्थायी शरीर से छुटकारा पाने के लिए भगवान् कृष्ण उन्हें ॐकार का उच्चारण करने की सलाह दे रहे हैं। इस प्रकार उनका आध्यात्मिक जगत में स्थानांतरण निश्चित हो जाता है। फिर भी, यदि वे आध्यात्मिक जगत में प्रवेश पा भी जाएँ, तो भी वे वहाँ के किसी भी ग्रह में प्रवेश नहीं पा सकते हैं। वे बाहर ब्रह्मज्योति में रहते हैं। ब्रह्मज्योति की तुलना सूर्य के प्रकाश से की जा सकती है और आध्यात्मिक ग्रहों की तुलना स्वयं सूर्य ग्रह से की जा सकती है। निर्विशेषवादी लोग आध्यात्मिक आकाश में भगवान् की प्रभा, ब्रह्मज्योति में रहते हैं। निर्विशेषवादियों को ब्रह्मज्योति में आध्यात्मिक चिंगारी के रूप में स्थान मिलता है और इस प्रकार ब्रह्मज्योति इन आध्यात्मिक चिंगारियों से भर जाती है। यही ब्रह्म में लीन हो जाना कहा जाता है। किसी को यह नहीं

समझ लेना चाहिए कि ब्रह्मज्योति में लीन होने का अर्थ ब्रह्मज्योति से एकाकार हो जाना है; हर आध्यात्मिक चिंगारी अपने निजी व्यक्तित्व को बनाये रखती है, परन्तु क्योंकि निर्विशेषवादी व्यैयक्तिक रूप लेना नहीं चाहते हैं, इसलिए वे ब्रह्मज्योति में चिंगारियों के रूप में पाये जाते हैं। जैसे सूर्य का प्रकाश अनेक अणु जैसे सूक्ष्म कणों से बना है, वैसे ही ब्रह्मज्योति भी अनेक आध्यात्मिक चिंगारियों से बनी है।

कुछ भी हो, जीव होने के कारण हम आनन्द लेना चाहते हैं। अस्तित्व होना अपने आप में पर्याप्त नहीं है। हम आनन्द चाहते हैं और साथ ही साथ अस्तित्व भी। अपनी पूर्णता में जीव तीन गुणों से बने होते हैं—शाश्वतता, ज्ञान और आनन्द। जो जीव ब्रह्मज्योति में निर्विशेष रूप से प्रवेश करते हैं, वे कुछ समय तक पूरे ज्ञान के साथ वहाँ रह सकते हैं कि वे अब पूरी तरह से ब्रह्म से मिल गये हैं, परन्तु वहाँ उन्हें शाश्वत आनन्द नहीं मिल सकता है, क्योंकि वह चीज वहाँ नहीं है। कोई व्यक्ति एक कमरे में अकेला कुछ समय तक रह सकता है और कोई पुस्तक पढ़ कर या किसी विचार में मग्न रह कर आनन्द ले सकता है, परन्तु यह सम्भव नहीं है कि वह उस कमरे में लगातार वर्षों तक रहे; और निश्चय ही वह अनंत काल तक तो वहाँ नहीं रह सकता है। इसलिए जो अव्यक्त रूप से परम सत्य में मिल जाते हैं, उनके लिए कुछ संगति पाने के लिए इस भौतिक संसार में फिर से गिरने की बहुत सम्भावना रहती है। यह *श्रीमद्भागवतम्* का निर्णय है। अंतरिक्ष यात्री हजारों

हजारों मील तक यात्रा कर सकते हैं, परन्तु यदि उन्हें किसी ग्रह पर विश्राम नहीं मिलता, तो उन्हें इस पृथ्वी पर वापस आना पड़ता है। कुछ भी हो, विश्राम की आवश्यकता तो होती ही है। अव्यक्त रूप में विश्राम अनिश्चित है। इसलिए *श्रीमद्भागवतम्* कहता है कि इतने परिश्रम के बाद भी यदि निर्विशेषवादी आध्यात्मिक विश्व में प्रवेश करता है और अव्यक्त रूप पाता है, तब भी वह इस भौतिक संसार में वापस आता है क्योंकि उसने प्रेम तथा भक्ति के साथ भगवान् की सेवा करने की उपेक्षा की है। इसलिए जब तक हम इस पृथ्वी पर हैं, हमें परम भगवान् कृष्ण की सेवा और उन्हें प्रेम करने का अभ्यास करना सीखना चाहिए। यदि हम इसे सीख लें, तो हम उन आध्यात्मिक लोकों में प्रवेश कर सकते हैं। निर्विशेषवादियों की परव्योम में स्थिति अस्थाई होती है, क्योंकि अकेलेपन के कारण वे कुछ संग पाने का प्रयास करेंगे। चूँकि वे व्यक्तिगत रूप से भगवान् की संगति प्राप्त नहीं करते हैं, इसलिए उन्हें इस संसार में फिर से आकर बद्धजीवों के संग में रहना पड़ता है।

इसलिए यह बहुत ही महत्त्वपूर्ण बात है कि हम अपने वैधानिक स्वरूप को समझें। हम शाश्वतता, पूर्ण ज्ञान और साथ ही साथ आनन्द भी चाहते हैं। जब हम अधिक समय के लिए निर्विशेष ब्रह्मज्योति में अकेले छोड़ दिये जाते हैं, तो हमें आनन्द नहीं मिल सकता है, अतः हम इस भौतिक संसार से मिलने वाले आनन्द को स्वीकार करते हैं। किन्तु कृष्ण-

भावनामृत में वास्तविक आनन्द का आस्वादन किया जाता है। भौतिक जगत में साधारणतया मैथुन ही सबसे ऊँचा आनन्द माना जाता है। यह आनन्द आध्यात्मिक जगत में पाये जाने वाले संभोग-आनन्द अर्थात् कृष्ण भगवान् के सान्निध्य से मिलने वाले आनन्द की विकृत परछाई है। परन्तु हमें यह नहीं सोचना चाहिए कि वह आनन्द इस भौतिक संसार के मैथुन के आनन्द जैसा है। नहीं, वह भिन्न है। परन्तु जब तक आध्यात्मिक जगत में यौन जीवन नहीं है, तब तक उसकी परछाई यहाँ नहीं आ सकती है। यहाँ तो यह केवल विकृत परछाई है, परन्तु वास्तविक जीवन वहाँ भगवान् कृष्ण में है, जो कि सभी आनन्दों से पूर्ण हैं। इसलिए सबसे उत्तम विधि अपने आप को अभी से प्रशिक्षित करना है, जिससे मृत्यु के समय हम आध्यात्मिक लोक में अर्थात् कृष्णलोक में पहुँच जाएँ और वहाँ कृष्ण की संगति करें। *ब्रह्मसंहिता* (५.२९) में भगवान् कृष्ण और उनके धाम का वर्णन इस प्रकार किया गया है :

चिन्तामणिप्रकरसद्मसुकल्पवृक्ष-
लक्षावृतेषु सुरभीरभिपालयन्तम्।
लक्ष्मीसहस्रशतसम्भ्रमसेव्यमानं
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥

"मैं उन आदिपुरुष भगवान् गोविंद का भजन करता हूँ, जो लाखों कल्पवृक्षों से घिरे हुए चिंतामणिसमूह से निर्मित भवनों में कामधेनु गायों का पालन करते हैं एवं जो असंख्य लक्ष्मियों अथवा गोपियों द्वारा सदैव प्रगाढ़ आदर और प्रेम

सहित सेवित हैं।"

यह कृष्णलोक का एक वर्णन है। वहाँ के घर चिन्तामणि रत्न से बने हुए हैं। चिन्तामणि पत्थर जिसे भी छूता है, वह तुरन्त सोना बन जाता है। वहाँ के वृक्ष इच्छा की पूर्ति करने वाले कल्पवृक्ष हैं। उनसे व्यक्ति जो कुछ भी चाहे, पा सकता है। इस संसार में हमें आम के वृक्ष से आम मिलता है और सेब के वृक्ष से सेब मिलता है, परन्तु वहाँ किसी भी वृक्ष से व्यक्ति जो चाहे वह पा सकता है। इसी प्रकार वहाँ गाएँ सुरभि कहलाती हैं, जो असीमित दूध देती हैं। यह वैकुण्ठ लोक का वर्णन है, जो वैदिक साहित्य में पाया जाता है।

इस भौतिक संसार में हम जन्म, मृत्यु और अनेक प्रकार के दुखों के अभ्यस्त हो गये हैं। भौतिक वैज्ञानिकों ने इन्द्रियों के आनन्द के लिए और विनाश के लिए अनेक सुविधाओं का आविष्कार कर लिया है, परन्तु उन्होंने वृद्धावस्था, बीमारी और मृत्यु जैसी समस्याओं का कोई भी हल नहीं ढूँढ़ा है। वे किसी ऐसे यंत्र का आविष्कार नहीं कर सकते हैं जो कि वृद्धावस्था, मृत्यु और बीमारी को रोक सके। हम ऐसी कोई चीज का निर्माण कर सकते हैं, जो कि मृत्यु की गति को और तेज कर दे, परन्तु ऐसी किसी चीज का नहीं जो कि मृत्यु को रोक दे। किन्तु जो बुद्धिमान हैं, वे इस सांसारिक जीवन के चार प्रकार के दुखों से मतलब नहीं रखते हैं, बल्कि आध्यात्मिक लोकों में उन्नति करने से मतलब रखते हैं। जो सदैव समाधि (*नित्य युक्तस्य योगिनः*) में रहता है, वह अपना ध्यान किसी अन्य

चीज में नहीं मोड़ता है। वह सदैव समाधि में स्थिर रहता है। उसका मन सदैव कृष्ण के चिन्तन में, किसी प्रकार से विचलित हुए बिना (*अनन्य-चेताः सततम्*) लगा रहता है। *सततम्* से तात्पर्य किसी भी जगह, किसी भी समय से है।

मैं भारत में वृन्दावन में रहता था और अब मैं अमरीका में हूँ, परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि मैं वृन्दावन के बाहर हूँ; क्योंकि यदि मैं सदैव कृष्ण के विषय में सोचूँ, तो मैं भौतिक उपाधियों ले जुड़े होने के बावजूद भी वृन्दावन में हूँ। कृष्णभावना का अर्थ यह है कि मनुष्य सदैव भगवान् कृष्ण के साथ वैकुण्ठ में, गोलोक वृन्दावन में रहता है और वह इस भौतिक शरीर को छोड़ने मात्र की प्रतीक्षा करता रहता है। *स्मरति नित्यशः* का अर्थ है, निरन्तर याद करना और जो कृष्ण का लगातार स्मरण करता है, उसके लिए कृष्ण सरलता से खरीदे जा सकते हैं—*तस्याहम् सुलभः।* कृष्ण स्वयं कहते हैं कि वे इस भक्तियोग की प्रक्रिया के द्वारा वे सरलता से खरीदे जा सकते हैं। तो हम किसी अन्य विधि को क्यों अपनाएँ? हम प्रति दिन चौबीसों घण्टे **हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण, हरे हरे / हरे राम, हरे राम, राम राम, हरे हरे** का कीर्तन कर सकते हैं। इसके लिए कोई नियम या विधि नहीं है। हम सड़क पर, रेलगाड़ी में, अपने घर में या कार्यालय में कीर्तन कर सकते हैं। इसमें कोई कर नहीं लगता या कोई खर्च नहीं होता। तो हम क्यों न इसे अपनाएं?



३

भौतिक ग्रहों से मुक्ति

ज्ञानी और योगी साधारण रूप से निर्विशेषवादी होते हैं और यद्यपि वे अव्यक्त ब्रह्मज्योति अर्थात् आध्यात्मिक आकाश में लीन होकर अस्थाई रूप से मुक्ति को प्राप्त कर लेते हैं, परन्तु *श्रीमद्भागवतम्* के अनुसार उनका ज्ञान शुद्ध नहीं माना जाता है। तपस्या, संयम और ध्यान के द्वारा वे परम सत्य के स्तर तक उन्नति कर सकते हैं, परन्तु जैसाकि पहले बताया गया है, वे फिर से इस भौतिक संसार में गिर जाते हैं, क्योंकि उन्होंने भगवान् कृष्ण के साकार रूप को गम्भीरता से नहीं लिया है। जब तक कोई भगवान् कृष्ण के चरणारविन्द की पूजा नहीं करता है, तब तक उसे फिर से भौतिक स्तर पर उतरना पड़ता है। इसलिए सबसे आदर्श दृष्टिकोण यह होगा कि, "मैं आपका सनातन सेवक हूँ। कृपा करके मुझे किसी न किसी प्रकार से अपनी सेवा में लगाइये।" कृष्ण भगवान् *अजित:* कहलाते हैं अर्थात् वे जीते नहीं जा सकते हैं, क्योंकि कोई भी भगवान् को नहीं जीत सकता है परन्तु *श्रीमद्-भागवतम्* के अनुसार जिसने ऐसा स्वभाव बना लिया है, वह

भगवान् पर सरलता से विजय पा सकता है। *श्रीमद्भागवतम्* में इस बात की संस्तुति भी की गयी है कि हमें भगवान् को नापने की व्यर्थ की प्रक्रिया को छोड़ देना चाहिए। हम इस आकाश की सीमाओं को भी नहीं नाप सकते हैं, तो परमेश्वर का क्या कहना। भगवान् कृष्ण की लम्बाई और चौड़ाई को अपने अल्प ज्ञान से नाप लेना सम्भव नहीं है और जो इस निष्कर्ष पर पहुँचता है, उसे वैदिक साहित्य के अनुसार बुद्धिमान समझा गया है। हर एक को बहुत ही नम्र भाव से यह समझना चाहिए कि वह इस ब्रह्माण्ड का बहुत ही नगण्य अंश है। परमेश्वर को अपने सीमित ज्ञान से या अपनी मानसिक कल्पनाओं से समझने की चेष्टाओं का त्याग करके हमें नम्र बनना चाहिए और परमेश्वर के विषय में प्रमाणित शास्त्रों, जैसे भगवद्गीता अथवा किसी आत्मदर्शी व्यक्ति के मुख से सुनना चाहिए।

भगवद्गीता में अर्जुन भगवान् के विषय में स्वयं कृष्ण के श्रीमुख से ही सुन रहा है। इस प्रकार अर्जुन ने विनित भाव से सुनकर परमेश्वर को समझने की विधि का मापदण्ड स्थापित किया है। यही हमारी स्थिति है कि हम भगवद्गीता को अर्जुन के मुख से या उनके अधिकृत प्रतिनिधि अर्थात् आध्यात्मिक गुरु से सुनें। सुनने के पश्चात्, इस उपार्जित ज्ञान का अभ्यास दैनिक जीवन में करना आवश्यक है। भक्त प्रार्थना करता है, "मेरे प्रिय भगवान्, आप अजेय हैं, परन्तु सुनने की इस विधि से आप जीत लिए गए हैं।" भगवान् अजेय हैं परन्तु वे उन

भक्तों द्वारा जीत लिए जाते हैं, जिन्होंने मानसिक कल्पनाओं को छोड़ दिया है और अधिकृत स्रोतों से सुनना शुरू किया है।

ब्रह्म-संहिता के अनुसार ज्ञान प्राप्त करने के दो मार्ग हैं—आरोह मार्ग या चढ़ाव की विधि और अवरोह मार्ग अर्थात् उतार की विधि। आरोह मार्ग में मनुष्य अपने खुद के द्वारा प्राप्त किये गये ज्ञान से प्रगति करता है। इसमें वह इस प्रकार सोचता है, "मैं किसी शास्त्र या महात्माओं की परवाह नहीं करता हूँ। मैं ज्ञान की प्राप्ति अपने आप ध्यान से या तत्त्वज्ञान इत्यादि से कर लूँगा, इत्यादि। इस प्रकार मैं भगवान् को समझ जाऊँगा।" दूसरी विधि अर्थात् अवरोही विधि में ज्ञान उच्च अधिकारियों से प्राप्त किया जाता है। *ब्रह्म-संहिता* बताती है कि यदि कोई आरोह विधि से हवा या मन की गति से लाखों वर्षों तक यात्रा करे, तब भी वह ज्ञान नहीं पा सकेगा। उसके लिए यह विषय सदैव दुर्ग्राह्य तथा अचिन्तनीय रहेगा। परन्तु यह विषयवस्तु भगवद्गीता में दी गई है—*अनन्यचेताः*—कृष्ण कहते हैं कि विनीत भाव से की जाने वाली भक्तिमय सेवा के मार्ग से विचलित हुए बिना उनका ध्यान करो। जो इस प्रकार उनकी पूजा करता है—*तस्याहम् सुलभः*—"उसके लिए मैं बहुत सरलता से उपलब्ध हो जाता हूँ।" विधि यह है : यदि कोई दिन में चौबीसों घण्टे भगवान् कृष्ण के लिए कार्य करता है, तो कृष्ण उसे भूल नहीं सकते हैं। विनम्र होकर वह भगवान् का ध्यान आकर्षित कर सकता है। जैसा हमारे गुरु महाराज

भक्तिसिद्धान्त सरस्वती कहा करते थे, "भगवान् को देखने का प्रयत्न मत करो। क्या वे नौकर की तरह हमारे सामने आकर खड़े हो जाएँ, केवल इसलिए कि हम उन्हें देखना चाहते हैं? यह नम्रता की विधि नहीं है। हमें उन्हें अपने प्रेम और अपनी सेवा के द्वारा अनुग्रहित करना है।"

मानव जाति को कृष्ण तक पहुँचने की सही विधि चैतन्य महाप्रभु ने दी थी और उनके प्रथम शिष्य रूप गोस्वामी ने इसकी प्रशंसा की थी। रूप गोस्वामी मुसलमान सरकार में मंत्री थे, लेकिन चैतन्य महाप्रभु के शिष्य बनने के लिए उन्होंने सरकारी पदवी छोड़ दी थी। जब वे सर्वप्रथम महाप्रभु को मिलने के लिए गए थे, तब वे निम्नलिखित श्लोक का उच्चारण करते हुए उनके समीप पहुँचे थे :

नमो महावदान्याय कृष्णप्रेमप्रदाय ते।
कृष्णाय कृष्णचैतन्यनाम्ने गौरत्विषे नमः॥

"मैं परम ईश्वर, श्रीकृष्ण चैतन्य के चरणों में सादर प्रणाम करता हूँ, जो अन्य किसी भी अवतार से—स्वयं कृष्ण से भी—अधिक उदार हैं, क्योंकि वे बिना किसी भेद के कृष्ण के शुद्ध प्रेम का मुक्त भाव से वितरण कर रहे हैं, जैसा और किसी ने नहीं किया है।" (चैतन्य चरितामृत, मध्य १९.५३)

रूप गोस्वामी ने चैतन्य महाप्रभु को सर्वाधिक उदार एवं परहितकारी व्यक्तित्व कहा था क्योंकि वे सबसे मूल्यवान वस्तु—कृष्ण प्रेम—को बहुत सस्ते में बाँट रहे थे। हम सब कृष्ण को चाहते हैं और उनके लिए लालायित हैं। कृष्ण सबसे

ज्यादा आकर्षक हैं, सबसे अधिक सुन्दर हैं, सबसे ज्यादा ऐश्वर्यवान हैं, सबसे ज्यादा शक्तिशाली हैं और सबसे अधिक ज्ञानी हैं। हमारी अनुरक्ति के पात्र वे ही हैं। हम सुन्दर, शक्तिशाली, ज्ञानी और धनवान को ढूँढ़ रहे हैं। कृष्ण इन सभी के सरोवर हैं, इसलिए हमें अपने ध्यान को केवल उनकी ओर ले जाने की आवश्यकता है और हमें हर चीज मिल जाएगी। हर चीज—जिसकी भी हमें इच्छा है। कृष्णभावनामृत की इस विधि से हमारे हृदय की सभी इच्छाओं की पूर्ति हो जाएगी।

जिसकी मृत्यु कृष्णभावनाभावित रहते हुए होती है, जैसाकि पहले कहा गया है, उसके लिए परम धाम अर्थात् कृष्णलोक में जाना निश्चित है, जहाँ भगवान् कृष्ण निवास करते हैं। इस बात पर कोई प्रश्न पूछ सकता है कि उस लोक में जाने से क्या लाभ है ? इसका उत्तर कृष्ण ने स्वयं ही दिया है :

मामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयम् अशाश्वतम्।
नाप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धिं परमां गताः॥

"मुझे प्राप्त करके महापुरुष, जो भक्तियोगी हैं, दुखों से भरे इस अनित्य जगत में कभी भी वापस नहीं लौटते, क्योंकि वे परम सिद्धि प्राप्त कर चुके होते हैं।" (भगवद्गीता ८.१५)

सृष्टिकर्ता भगवान् श्रीकृष्ण ने इस भौतिक संसार को *दुखालयम्* अर्थात् दुखों से भरा स्थान बताया है। फिर हम इसे सुखदायी कैसे बना सकते हैं? क्या विज्ञान की तथाकथित प्रगति से इस संसार को सुखी बनाना सम्भव है? नहीं, यह

सम्भव नहीं है। इसके परिणामस्वरूप, हम यह भी नहीं जानना चाहते हैं कि ये दुख हैं क्या। जैसाकि पहले बताया गया है, ये दुख जन्म, मृत्यु, वृद्धावस्था और बीमारी के हैं और क्योंकि हम इसे हल नहीं कर पाते हैं, हम इन्हें टालने का प्रयास करते हैं। विज्ञान के पास हमें सदैव कष्ट देने वाली इन समस्याओं को हल करने की कोई शक्ति नहीं है। इसके विपरीत, वे हमारे ध्यान को अंतरिक्षयान या अणु बम बनाने की ओर ले जाते हैं। इन समस्याओं का हल यहाँ भगवद्गीता में दिया गया है : यदि कोई भगवान् कृष्ण के धाम को प्राप्त कर लेता है, तो उसे जन्म और मृत्यु वाली इस धरती में फिर वापस नहीं आना होता है। हमें यह समझने का प्रयत्न करना चाहिए कि यह जगह दुखों से पूर्ण है। इसको समझने के लिए कुछ विकसित चेतना चाहिए। कुत्ते, बिल्लियाँ और सूअर समझ नहीं सकते कि वे दुख पा रहे हैं। मनुष्य को तर्कसंगत पशु कहा गया है, परन्तु उसकी इस विचारशीलता का उपयोग दुखमय स्थिति से मुक्ति पाने का हल ढूँढ़ने के बजाए, पाशविक मनोवृत्ति को बढ़ाने में लगाया जा रहा है। यहाँ कृष्ण साफसाफ कहते हैं कि जो उनके पास पहुँच जाता है, वह दुख पाने के लिए फिर कभी जन्म नहीं लेगा। उनके पास जाने वाले महान् आत्माओं को जीवन की सबसे बड़ी सिद्धि मिल चुकी है, जो जीवात्मा को बद्ध जीवन से छुटकारा दिलाती है।

भगवान् कृष्ण और सामान्य जीव में एक अन्तर यह है कि सामान्य व्यक्ति एक समय में केवल एक स्थान पर ही

उपस्थित रह सकता है परन्तु भगवान् कृष्ण सारे ब्रह्माण्ड में हर जगह उपस्थित हो सकते हैं और साथसाथ अपने धाम में भी। आध्यात्मिक जगत में कृष्ण भगवान् का धाम गोलोक वृन्दावन कहलाता है। भारत में स्थित वृन्दावन वही गोलोक वृन्दावन है, जो पृथ्वी पर उतर आया है। जब भगवान् कृष्ण अपनी अन्तरंगा शक्ति से अवतरित होते हैं, तो उनका धाम भी पृथ्वी पर उतर आता है। दूसरे शब्दों में, जब भगवान् कृष्ण इस पृथ्वी पर अवतरित होते हैं, तब वे उस स्थान विशेष पर ही प्रकट होते हैं। इसके बावजूद भी भगवान् कृष्ण का धाम सदैव वैकुण्ठ के दिव्य वातावरण में बना रहता है। इस श्लोक में भगवान् कृष्ण घोषणा करते हैं कि जो उनके निवास स्थान वैकुण्ठ में आता है, उसे इस भौतिक संसार में फिर कभी भी जन्म नहीं लेना होता है। ऐसे व्यक्ति को *महात्मा* कहते हैं। पाश्चात्य देश में महात्मा शब्द साधारणतया महात्मा गाँधी के सम्बन्ध में सुना जाता है, परन्तु हमें समझ लेना चाहिए कि महात्मा किसा राजनितिक नेता की उपाधि नहीं है। बल्कि महात्मा से तात्पर्य प्रथम श्रेणी के कृष्णभावनाभावित व्यक्ति से है, जो कि कृष्णलोक जाने के योग्य है। महात्मा की पूर्णता यह है कि वह मनुष्ययोनि के जीवन और प्रकृति के स्त्रोतों का उपयोग जन्म और मृत्यु के चक्र से अपने आप को मुक्त करने के लिए करे।

एक बुद्धिमान व्यक्ति जानता है कि वह दुख नहीं चाहता, परन्तु दुख उस पर बलपूर्वक थोपे जाते हैं। जैसाकि पहले

बताया गया है, हम सदैव मन, शरीर, प्राकृतिक उपद्रवों अथवा अन्य जीवों के कारण दुखमय स्थिति में रहते हैं। किसी न किसी प्रकार का दुख सदैव हमारे ऊपर थोपा जाता है। यह भौतिक संसार दुख के लिए ही बना है। जब तक दुख नहीं होता है, तब तक हम कृष्णभावनाभावित नहीं हो सकते हैं। दुख तो वास्तव में वह प्रेरणा है, जो हमें कृष्णभावनामृत तक ऊपर उठने में सहायता देती है। बुद्धिमान व्यक्ति प्रश्न करता है कि ये दुख उसके ऊपर बलपूर्वक क्यों थोपे जाते हैं? लेकिन आधुनिक संस्कृति का दृष्टिकोण है, "मुझे दुख सहने दो। मादक वस्तुओं का सेवन करके मुझे दुखों को ढकने दो। बस यही।" परन्तु जैसे ही मादकता का प्रभाव समाप्त हो जाता है, दुख वापस आ जाते हैं। कृत्रिम मादकता से जीवन के दुखों का हल नहीं किया जा सकता है। समाधान तो कृष्ण-भावनामृत से होता है।

कोई यह कह सकता है कि यद्यपि कृष्ण के भक्त कृष्णलोक में प्रवेश करने का प्रयत्न कर रहे हैं, किन्तु अन्य सब की रुचि तो चन्द्रमा तक जाने की है। क्या चन्द्रमा पर जाना भी पूर्णता नहीं है? अन्य ग्रहों की यात्रा करने की मनोवृत्ति जीवों में सदैव ही रही है। जीव का एक नाम *सर्वगत* है जिसका अर्थ है, "वह जो हर जगह यात्रा करना चाहता है।" यात्रा करना जीवों के स्वभाव का एक भाग है। चन्द्रमा पर जाने की इच्छा कोई नवीन इच्छा नहीं है। योगी भी उच्च ग्रहों में जाने के इच्छुक हैं, परन्तु भगवद्गीता (८.१६) में

कृष्ण बतलाते हैं कि इससे कोई लाभ नहीं होगा।

आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन।
मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते॥

"इस भौतिक ब्रह्माण्ड में सर्वोच्च लोक से लेकर निम्नतम सारे लोक दुखों के घर हैं, जहाँ जन्म तथा मरण का पुनरावर्तन होता रहता है। किन्तु हे कुन्तीपुत्र, जो मेरे धाम को प्राप्त कर लेता है, वह फिर कभी जन्म नहीं लेता।"

इस ब्रह्माण्ड का विभाजन उच्च, मध्यम और निम्न ग्रहमंडलों में किया जाता है। पृथ्वी को मध्यम ग्रहमंडल का सदस्य माना जाता है। भगवान् कृष्ण कहते हैं कि यदि कोई सबसे ऊँचे ग्रह कहे जाने वाले ब्रह्मलोक में भी पहुँच जाए, वहाँ भी जन्म और मृत्यु का चक्र पाया जाता है। ब्रह्माण्ड के अन्य लोक जीवों से भरे हैं। हमें यह नहीं सोचना चाहिए कि हम ही यहाँ हैं और अन्य सभी ग्रह खाली हैं। अपने अनुभव से हम देख सकते हैं कि इस पृथ्वी में कोई स्थान जीवों से खाली नहीं है। यदि हम भूमि को गहरा खोदें, तो हम कीड़े पाएँगे; यदि हम पानी में गहराई में जाएँ, तो जलचर पाएँगे और यदि हम आकाश में जाएँ, तो हमें बहुत सारे पक्षी मिलेंगे। तो यह निष्कर्ष निकालना कैसे सम्भव है कि अन्य ग्रहों में जीव नहीं हैं? परंतु कृष्ण कहते हैं कि यदि हम उन ग्रहों में पहुँच भी जाएँ, जहाँ महान् देवता वास करते हैं, वहाँ भी हम मृत्यु के अधीन होंगे। पुनः भगवान् कृष्ण दोहराते हैं कि जो उनके लोक में पहुँच जाता है, उसे फिर से जन्म लेना

नहीं पड़ता।

हमें आनन्द और ज्ञान से पूर्ण अपने सनातन जीवन को पाने के लिए अत्यन्त गम्भीर होना चाहिए। हम भूल गये हैं कि यही वास्तव में हमारे जीवन का उद्देश्य है और यही हमारा वास्तविक स्वार्थ है। हम क्यों भूल गए हैं? हम केवल भौतिक चमक—ऊँचे भवनों, बड़े कारखानों, राजनैतिक क्रीड़ाओं—से बंदी बनाए गये हैं, यद्यपि हम समझते हैं कि हम कितनी ही बड़ी इमारतें क्यों न बना लें, हम वहाँ अनन्त समय तक नहीं रह पाएँगे। हमें अपनी शक्ति को बड़े बड़े कारखाने या शहर बनाने में नष्ट नहीं करना चाहिए, क्योंकि ये हमें भौतिक प्रकृति के बन्धन में और बाँध देंगे। हमें तो अपनी शक्ति का उपयोग कृष्णभावनामृत को विकसित करके दिव्य शरीर प्राप्त करने के लिए करना चाहिए, जिससे हम कृष्णलोक में प्रवेश पा सकें। कृष्णभावनामृत मात्र एक धार्मिक सूत्र या आध्यात्मिक मनोरंजन नहीं है, बल्कि यह जीव का अत्यन्त आवश्यक अंग है।



४

ब्रह्माण्ड के परे आकाश—वैकुण्ठलोक

यदि इस ब्रह्माण्ड के उच्च ग्रहों में भी जन्म और मृत्यु होते हैं, तो महान् योगी उन्नति करके वहाँ तक पहुँचने की चेष्टा क्यों करते हैं? यद्यपि योगियों के पास अनेक सिद्धियाँ होती हैं, फिर भी उन में भौतिक जीवन की सुविधाओं का आनन्द लेने की मनोवृत्ति होती है। उच्च ग्रहों में अविश्वसनीय रूप की लम्बी अवधि का जीवन सम्भव है। इन ग्रहों के समय की गणना भगवान् कृष्ण ने बतलायी है :

सहस्रयुगपर्यन्तमहर्यद्ब्रह्मणो विदुः।
रात्रिंयुगसहस्रान्तां तेऽहोरात्रविदो जनाः॥

"मानवीय गणना के अनुसार एक हजार युग मिलकर ब्रह्मा का एक दिन बनता है और ब्रह्मा की रात्रि भी इतनी ही बड़ी होती है।" (भगवद्गीता ८.१७)

एक युग ४३ लाख वर्ष का होता है। इस संख्या को एक हजार से गुणा करके ब्रह्मलोक में ब्रह्मा के बारह घण्टे होते हैं।

इसी प्रकार के अगले बारह घण्टों की अवधि ब्रह्मा की रात्रि होती है। ऐसे तीस दिनों का एक महीना होता है और बारह महीनों का एक वर्ष होता है और ब्रह्मा ऐसे सौ वर्षों तक जीवित रहते हैं। वास्तव में ऐसे ग्रहों में जीवन बहुत लम्बा होता है, परन्तु अरबों वर्षों के उपरान्त भी ब्रह्मलोक के जीवों को मृत्यु का सामना तो करना ही पड़ता है। जब तक हम आध्यात्मिक लोकों में नहीं चले जाते हैं, तब तक मृत्यु से कोई बचाव नहीं है।

अव्यक्ताद्व्यक्तय: सर्वा: प्रभवन्त्यहरागमे।
रात्र्यागमे प्रलीयन्ते तत्रैवाव्यक्तसंज्ञके॥

"ब्रह्मा के दिन का जब शुभारम्भ होता है, सारे जीवों का यह समूह व्यक्त अवस्था में आता है और फिर जब रात्रि आती है, तो वे पुनः लुप्त हो जाते हैं।" (भगवद्गीता ८.१८)

ब्रह्मा के दिन के अन्त में सभी निम्न लोक पानी में डूब जाते हैं और उन पर रहने वाले सभी जीवों का विनाश हो जाता है। इस प्रलय के बाद और ब्रह्मा की रात्रि समाप्त होने पर प्रात: काल जब ब्रह्मा जागते हैं, तब फिर से सृष्टि होती है और ये सभी जीव प्रकट हो जाते हैं। इस प्रकार सृष्टि और प्रलय के अधीन होना इस भौतिक संसार की सहज वृत्ति है।

भूतग्राम: स एवायं भूत्वा भूत्वा प्रलीयते।
रात्र्यागमेऽवश: पार्थ प्रभवत्यहरागमे॥

"हे पार्थ, बारम्बार ब्रह्मा का दिन आता है और तब सारे जीव क्रियाशील होते हैं और ब्रह्मा की रात्रि होते ही वे

असहाय होकर विलीन हो जाते हैं।" (भगवद्गीता ८.१९)

यद्यपि जीव सर्वनाश नहीं चाहते हैं, फिर भी प्रलय आएगा और सभी लोकों को जलाक्रांत कर लेगा और उन लोकों के सभी जीव ब्रह्मा की रात्रि भर पानी में डूबे रहते हैं। परन्तु जैसे ही दिन आता है, पानी धीरे धीरे अदृश्य हो जाता है।

परस्तस्मात्तु भावोऽन्योऽव्यक्तोऽव्यक्तात्सनातनः।
यः स सर्वेषु भूतेषु नश्यत्सु न विनश्यति॥

"इसके अतिरिक्त इस व्यक्त तथा अव्यक्त पदार्थ से परे एक अन्य प्रकृति है, जो शाश्वत एवं दिव्य है। यह परा (श्रेष्ठ) प्रकृति है और कभी नाश न होने वाली है। जब इस संसार में सब कुछ नष्ट हो जाता है, तब भी वह अंश उसी प्रकार बना रहता है।" (भगवद्गीता ८.२०)

इस भौतिक ब्रह्माण्ड की सीमाओं की हम गणना नहीं कर सकते हैं, परन्तु हमारे पास वैदिक ज्ञान है जिससे मालूम होता है कि सम्पूर्ण सृष्टि में करोड़ों ब्रह्माण्ड हैं और इन भौतिक ब्रह्माण्डों के परे एक दूसरा आकाश है, जो आध्यात्मिक है। वहाँ के सभी ग्रह सनातन हैं और उन पर सभी जीवों का जीवन सनातन है। इस श्लोक में *भावः* शब्द का अर्थ प्रकृति है और यहाँ एक दूसरी प्रकृति की ओर संकेत किया गया है। इस संसार में भी हमें दो प्रकृतियों का अनुभव होता है। जीव आत्मा है और जब तक वह (आत्मा) इस भौतिक पदार्थ के अन्दर है, पदार्थ गतिशील रहता है और जैसे ही यह जीव

अर्थात् आध्यात्मिक चिंगारी शरीर छोड़ देती है, शरीर गतिहीन (निर्जीव) हो जाता है। आध्यात्मिक प्रकृति को कृष्ण की अन्तरंगा प्रकृति कहते हैं और भौतिक प्रकृति को बहिरंगा प्रकृति कहते हैं। इस भौतिक प्रकृति के परे अन्तरंगा प्रकृति है, जो सर्वथा आध्यात्मिक है। इसको प्रायोगात्मक ज्ञान से समझना सम्भव नहीं है। हम दूरदर्शी यंत्र से करोड़ों तारे देख सकते हैं, परन्तु हम उनके समीप नहीं पहुँच सकते। हमें अपनी अक्षमताओं को समझना होगा। यदि हम इस भौतिक विश्व को भी अपने प्रायोगात्मक ज्ञान से नहीं समझ सकते हैं, तो भगवान् और उनके साम्राज्य को समझने की क्या सम्भावना है? इसे प्रायोगात्मक रूप से समझना असम्भव है। हमें भगवद्गीता को सुनकर ही समझना होगा। हम प्रायोगात्मक विधि से नहीं समझ सकते हैं कि हमारे पिता कौन हैं; हमें अपनी माँ के कथन को सुनना होगा और उस पर विश्वास करना होगा। यदि हम अपनी माँ पर विश्वास नहीं करते हैं, तो जानने की अन्य कोई विधि नहीं है। इसी प्रकार, यदि हम कृष्णभावनामृत की विधि मात्र में लगे रहें, तो कृष्ण और उनके साम्राज्य की सभी जानकारी प्रकट हो जायेगी।

परस् तु भावः का अर्थ है, "श्रेष्ठ प्रकृति" और *व्यक्तः* का अर्थ है, जिसे हम प्रकट रूप में देखते हैं। हम देख सकते हैं कि यह भौतिक ब्रह्माण्ड पृथ्वी, सूर्य, तारों और अन्य लोकों के माध्यम से व्यक्त होता है। और इस ब्रह्माण्ड के परे एक दूसरी प्रकृति है, जो सनातन है। *अव्यक्तात् सनातनः।* इस

भौतिक प्रकृति का प्रारम्भ भी है और अन्त भी है, परन्तु वह आध्यात्मिक प्रकृति सनातन है। न तो उसका प्रारम्भ है और न ही अन्त। यह कैसे सम्भव है ? जब बादल आकाश में आता है, तो ऐसा लगता है कि उसने आकाश का एक बड़ा भाग ढक लिया है, परन्तु वास्तव में वह बादल बहुत छोटा सा बिन्दु होता है और उसने सम्पूर्ण आकाश के केवल एक नगण्य अंश को ढका होता है। क्योंकि हम इतने छोटे हैं, इसलिए बादल द्वारा कुछ सौ मील तक के भाग को ढक लिये जाने पर हमें प्रतीत होता है कि सम्पूर्ण आकाश ढक गया है। इसी प्रकार यह सारा भौतिक ब्रह्माण्ड अनन्त आध्यात्मिक आकाश में एक छोटे से महत्त्वहीन बादल के टुकड़े जैसा है। यह भौतिक विश्व महत्तत्त्व—पदार्थ के अन्दर बँधा है। जैसे बादलों का प्रारम्भ और अंत होता है, उसी प्रकार इस भौतिक प्रकृति का भी प्रारम्भ और अंत होता है। जब बादल छँट जाते हैं और आकाश साफ हो जाता है, तब हम हर चीज को साफ साफ देख सकते हैं। इसी प्रकार शरीर आत्मा पर से गुजरते हुए बादलों की तरह है। वह कुछ समय तक वहाँ ठहरता है, कुछ गौण उत्पादन करता है, घटता है और अन्त में लुप्त हो जाता है। किसी भी भौतिक क्रिया जिसे हम देखते हैं, उसमें भौतिक प्रकृति के ये छः परिवर्तन होते हैं—वह उत्पन्न होती है, बढ़ती है, कुछ समय तक वहाँ रहती है, कुछ गौण चीजें उत्पन्न करती है, क्षीण होती है और लुप्त हो जाती है। भगवान् कृष्ण बतलाते हैं कि बादल जैसी परिवर्तनशील इस प्रकृति के परे

एक आध्यात्मिक प्रकृति है, जो सनातन है। इसके अतिरिक्त जब यह भौतिक प्रकृति लुप्त हो जाएगी, तब भी वह *अव्यक्तात् सनातन* विद्यमान रहेगी।

वैदिक साहित्य में इस भौतिक आकाश और आध्यात्मिक आकाश के विषय में बहुत सारी जानकारी है। *श्रीमद्भागवतम्* के दूसरे स्कन्ध में आध्यात्मिक आकाश और उसके निवासियों का वर्णन है। इसमें तो यह जानकारी भी दी गयी है कि आध्यात्मिक व्योम में दिव्य विमान होते हैं और मुक्त जीव इन दिव्य विमानों में बिजली की तरह यात्रा करते हैं। जो भी चीज हम यहाँ देखते हैं, वह वास्तविक रूप में वहाँ भी पाई जा सकती है। इस भौतिक आकाश में हर चीज आध्यात्मिक आकाश में पाई जाने वाली चीज की विकृत परछाईं या नकल है। जैसे सिनेमा में हम केवल वास्तविक चीज की परछाईं या छवि देखते हैं, वैसे ही *श्रीमद्भागवतम्* में कहा गया है कि यह भौतिक जगत द्रव्यों का संयोग मात्र है, जो वास्तविकता के आधार पर उसी तरह बनाया गया है, जिस प्रकार दुकान की खिड़की में लड़की की मूर्ति वास्तविक लड़की की तरह ही बनायी जाती है। हर समझदार व्यक्ति जानता है कि मूर्ति एक नकल मात्र है। श्रीधर स्वामी कहते हैं कि चूंकि आध्यात्मिक जगत सत्य है, इसलिए यह भौतिक संसार जो उसकी नकल है, वास्तविक लगता है। हमें वास्तविकता का अर्थ जानना होगा—वास्तविकता का अर्थ है वह अस्तित्व जिसे नष्ट नहीं किया जा सकता है; वास्तविकता

का अर्थ है, शाश्वतता :

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः॥

"तत्त्वदर्शियों ने यह निष्कर्ष निकाला है कि असत् का तो कोई स्थायित्व नहीं है, और सत् का अन्त नहीं है। उन्होंने इन दोनों की प्रकृति के अध्ययन द्वारा यह निष्कर्ष निकाला है।" (भगवद्गीता २.१६)

वास्तविक आनन्द भगवान् कृष्ण हैं और यह भौतिक आनन्द जो अस्थाई है, वास्तविक नहीं है। जो व्यक्ति चीजों को यथारूप देख सकते हैं, वे परछाई के आनन्द में भाग नहीं लेते हैं। मनुष्य जीवन का वास्तविक उद्देश्य आध्यात्मिक आकाश को प्राप्त करना है, परन्तु जैसाकि *श्रीमद्भागवतम्* बताता है, अधिकांश लोग इस विषय में नहीं जानते हैं। मनुष्य जीवन सत्य को समझने के निमित्त है और उसमें स्थानान्तरित होने के लिए है। सभी वैदिक साहित्य हमें यही शिक्षा देते हैं कि इस अंधकार में मत रहो। इस भौतिक संसार का स्वभाव अंधकारमय है, परन्तु आध्यात्मिक लोक सदैव प्रकाशमान है, यद्यपि वह बिजली या अग्नि से प्रकाशित नहीं है। भगवद्गीता के पन्द्रहवें अध्याय (१५.६) में कृष्ण भगवान् इसका संकेत करते हैं :

न तद्भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम॥

"वह मेरा परम धाम न तो सूर्य या चन्द्र के द्वारा प्रकाशित

होता है और न ही अग्नि से। जो लोग वहाँ पहुँच जाते हैं, वे इस भौतिक जगत में दोबारा कभी नहीं लौटते।"

आध्यात्मिक लोक को अव्यक्त कहा जाता है, क्योंकि भौतिक इन्द्रियों से इसकी प्रतीति नहीं की जा सकती है।

अव्यक्तोऽक्षर इत्युक्तस्तमाहुः परमां गतिम्।
यं प्राप्य न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम॥

"उस परम धाम को अव्यक्त तथा अविनाशी कहा जाता है और वही परम गन्तव्य है। जब कोई वहाँ जाता है, वह कभी वापस नहीं लौटता। वह मेरा परम धाम है।" (भगवद्गीता ८.२१)

इस श्लोक में महान् यात्रा की ओर संकेत किया गया है। हमें बाहरी आकाश को बेध कर, इस भौतिक ब्रह्माण्ड को पार करते हुए, उसके आवरणों में छेद करके आध्यात्मिक आकाश में प्रवेश करने में सक्षम होना पड़ता है। *परमां गतिम्*—वह यात्रा परम है। इस पृथ्वी से कुछ हजार मील दूर जाकर फिर वापस आने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। ऐसी यात्रा कोई वीरतापूर्ण कार्य नहीं है। हमें सम्पूर्ण भौतिक ब्रह्माण्ड के पार जाना होता है। ऐसा हम अंतरिक्षयानों के द्वारा नहीं, बल्कि कृष्णभावनामृत के द्वारा कर सकते हैं। जो मनुष्य कृष्ण-भावनामृत में निमग्न है और जो मृत्यु के समय भगवान् कृष्ण का ध्यान करता है, वह तुरन्त वहाँ स्थानान्तरित हो जाता है। यदि हम सचमुच में आध्यात्मिक आकाश में जाना चाहते हैं और पूर्ण ज्ञानमय, सनातन आनन्दमय जीवन का अनुशीलन

करना चाहते हैं, तो हमें अभी से *सत्-चिद्-आनन्द* शरीर बनाने का प्रयत्न आरम्भ करना होगा। कहा जाता है कि कृष्ण का शरीर *सत्-चिद्-आनन्द* है—*ईश्वरः परमः कृष्णः सत्-चिद्-आनन्द-विग्रहः*—और हमारे पास भी ऐसा ही शाश्वतता, ज्ञान और आनन्द से परिपूर्ण शरीर है, परन्तु वह बहुत छोटा है और पदार्थ के आवरण से ढका हुआ है। यदि किसी भी तरह से हम इस असत् आवरण को त्याग सकें, तो हम उस आध्यात्मिक विश्व में पहुँच सकते हैं। यदि एक बार हम उस आध्यात्मिक जगत को प्राप्त कर लें, तो वापस आना जरूरी नहीं है (*यं प्राप्य न निवर्तन्ते*)।

तब हर एक को उस परम धाम, कृष्ण के सर्वोच्च धाम में जाने का प्रयास करना चाहिए। कृष्ण स्वयं हमें बुलाने के लिए आते हैं और वे हमें मार्गदर्शन के लिए साहित्य देते हैं एवं अपने अधिकृत प्रतिनिधियों को भेजते हैं। हमें मनुष्य जीवन में दी गई इस सुविधा का लाभ उठाना चाहिए। जो उस परम धाम में पहुँच जाता है, उसके लिए फिर संयम, तपस्या, योग-ध्यान इत्यादि की आवश्यकता नहीं रहती और जो वहाँ नहीं पहुँच पाते हैं, उनकी सभी तपस्याएँ व संयम व्यर्थ में समय की बरबादी मात्र ही है। मनुष्य योनि इस वरदान का लाभ उठाने का सुअवसर है और किसी राष्ट्र, माता-पिता, गुरु तथा परिपालक का यह कर्तव्य है कि जिन्होंने यह मनुष्य योनि पा ली है, उन्हें जीवन की इस पूर्णता को प्राप्त करने के लिए उन्नत बनाएं। केवल कुत्ते-बिल्लियों की भाँति खाना, सोना,

मैथुन करना और लड़ना सभ्यता नहीं है। हमें इस मनुष्य योनि का सदुपयोग करना चाहिए और इस ज्ञान का लाभ खुद को कृष्णभावना के लिए तैयार करने के लिए उठाना चाहिए, ताकि हम दिन के चौबीसों घण्टे कृष्ण भगवान् के स्मरण में तल्लीन रहें और मृत्यु के समय तुरन्त आध्यात्मिक आकाश में जा सकें।

पुरुषः स परः पार्थ भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया।
यस्यान्तःस्थानि भूतानि येन सर्वमिदं ततम्॥

"पूर्ण पुरुषोत्तम परमेश्वर, जो सबसे महान् हैं, अनन्य भक्ति के द्वारा प्राप्त किये जा सकते हैं। यद्यपि वे अपने धाम में विराजमान रहते हैं, तो भी वे सर्वव्यापी हैं और सब कुछ उनमें ही स्थित है।" (भगवद्गीता ८.२२)

यदि हम सचमुच उस परम धाम को जाने के इच्छुक हैं, तो भक्ति ही उसकी विधि है, जो यहाँ दी गई है। *भक्त्या* का अर्थ है, भक्तिमय सेवा—परमेश्वर की शरणागति। *भक्त्या* की मूल धातु *भज्* है जिसका अर्थ है, सेवा करना। नारद पञ्चरात्र में भक्ति की परिभाषा, "उपाधियों से मुक्ति" बताई गई है। यदि मनुष्य शुद्ध आत्मा के साथ जुड़ी सभी उपाधियों से मुक्ति पाने का निश्चय करता है, जो कि शरीर के कारण उत्पन्न होती हैं और शरीर के बदलने पर सदैव बदल जाती हैं, तो वह भक्ति प्राप्त कर सकता है। भक्ति का अर्थ यह अनुभव करना है कि व्यक्ति पवित्र आत्मा है, पदार्थ बिल्कुल नहीं। हमारी वास्तविक पहचान यह शरीर नहीं है, जो आत्मा का आवरण

मात्र है, परन्तु हमारा वास्तविक स्वरूप *दास* का है—भगवान् कृष्ण का सेवक। जब कोई अपनी वास्तविक पहचान में स्थित होता है और कृष्ण की सेवा में लगा रहता है, तो उसे भक्त कहते हैं। *हृषीकेण हृषीकेश सेवनम्* (चैतन्य चरितामृत, मध्य १९.१७०)—जब हमारी इन्द्रियाँ सांसारिक उपाधियों से मुक्त हों, तब हम उनका उपयोग इन्द्रियों के स्वामी हृषीकेश या कृष्ण की सेवा में करेंगे।

जैसाकि रूप गोस्वामी कहते हैं, हमें भगवान् कृष्ण की सेवा अनुकूल रूप से करनी चाहिए। साधारणतया हम भगवान् की सेवा कुछ भौतिक उद्देश्य या लाभ के लिए करना चाहते हैं। निस्सन्देह, भगवान् के पास भौतिक लाभ के लिए जो जाता है, वह उससे कहीं अच्छा है, जो भगवान् के पास कभी जाता ही नहीं, परन्तु हमें भौतिक लाभ की इच्छा से मुक्त होना चाहिए। कृष्ण को समझना हमारा उद्देश्य होना चाहिए। निस्सन्देह, कृष्ण अनन्त हैं और उन्हें समझना सम्भव नहीं है, परन्तु हम जो कुछ भी समझ सकते हैं, उसे हमें स्वीकार करना होता है। भगवद्गीता विशेष रूप से हमारे समझने के लिए प्रदान की गई है। इस प्रकार ज्ञान ग्रहण करके हमें जान लेना चाहिए कि कृष्ण प्रसन्न होते हैं और हमें उनकी प्रसन्नता के अनुरूप उनकी अनुकूल सेवा करनी चाहिए। कृष्णभावनामृत एक महान् विज्ञान है जिसमें विपुल साहित्य उपलब्ध है और भक्ति की उपलब्धि के लिए हमें उसका उपयोग करना चाहिए।

पुरुषः स परः—दिव्य लोक में परमेश्वर परम पुरुष के रूप में विद्यमान हैं। वहाँ अनगिनत स्वयं प्रकाशित ग्रह हैं और हर एक में कृष्ण का एक विस्तार निवास करता है। वे चार भुजाओं वाले हैं और उनके अनगिनत नाम हैं। वे सभी साकार व्यक्ति हैं—वे निर्विशेष-निराकार नहीं हैं। इन पुरुषों अथवा व्यक्तियों तक केवल भक्ति के द्वारा ही पहुँचा जा सकता है; चुनौती, दार्शनिक अटकलों, मानसिक कल्पनाओं या शारीरिक व्यायामों से नहीं, बल्कि निष्काम भक्ति से ही उनके पास जाया जा सकता है।

ये *पुरुषः* अर्थात् परम व्यक्ति कैसे हैं? *यस्यान्तःस्थानि भूतानि येन सर्वं इदं ततम्*—हर जीवात्मा और प्रत्येक वस्तु उनके भीतर है, फिर भी वे उनके बाहर हैं और सब जगह उपस्थित हैं। यह कैसे है? वे ठीक सूर्य की भाँति हैं, जो एक स्थान पर स्थित है परन्तु फिर भी वह अपनी किरणों के द्वारा हर जगह उपस्थित है। यद्यपि भगवान् अपने परम धाम में विद्यमान हैं, परन्तु उनकी शक्तियाँ सब जगह वितरित हैं। न ही वे अपनी शक्तियों से भिन्न हैं, जैसे सूर्य और सूर्य का प्रकाश एक दूसरे से अभिन्न हैं। चूँकि कृष्ण और उनकी शक्तियाँ भिन्न नहीं है, इसलिए यदि हम भक्तियोग में प्रगति कर लें, तो हम कृष्ण को हर जगह देख सकते हैं।

प्रेमाञ्जनच्छुरित भक्ति विलोचनेन
सन्तः सदैव हृदयेषु विलोकयन्ति।

"मैं आदि पुरुष गोविन्द की पूजा करता हूँ जिन्हें उनके

अनन्य भक्त, जिनकी आँखों में भगवान् के प्रेम का काजल लगा होता है, सदा अपने हृदय में देखते हैं।" (*ब्रह्म-संहिता* ५.३८)

जो भगवान् के प्रेम से परिपूर्ण होते हैं, वे उन्हें निरंतर अपने समक्ष देखते हैं। ऐसा नहीं है कि कल रात्रि को हमने भगवान् को देखा था और अब वे उपस्थित नहीं हैं। नहीं, जो कृष्णभावनाभावित हैं उनके लिए कृष्ण सदैव उपस्थित हैं और लगातार देखे जा सकते हैं। हमें केवल उन्हें देखने के लिए अपनी आँखें विकसित करनी हैं।

हमारे भौतिक बन्धन के कारण अर्थात् इन भौतिक इन्द्रियों के आवरण के कारण हम समझ नहीं सकते हैं कि आध्यात्मिक क्या है। परन्तु इस अज्ञानता को हरे कृष्ण के कीर्तन की इस प्रक्रिया से हटाया जा सकता है। यह कैसे? सोये हुए व्यक्ति को शब्द की ध्वनि से जगाया जा सकता है। यद्यपि मनुष्य पूरी तरह से अचेत हो—वह न देख सकता हो, न अनुभव कर सकता हो, न सूँघ सकता हो, इत्यादि—परन्तु सुनने की इन्द्रिय इतनी प्रभावशाली है कि सोया हुआ व्यक्ति केवल शब्द ध्वनि से जगाया जा सकता है। इसी प्रकार, आत्मा जो अभी भौतिक स्पर्श की निद्रा के वश में है, उसे "**हरे कृष्ण , हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण, हरे हरे / हरे राम, हरे राम, राम राम, हरे हरे**" की दिव्य ध्वनि से पुनः होश में लाया जा सकता है। हरे *कृष्ण* भगवान् और उनकी शक्तियों के प्रति एक सम्बोधन मात्र है। हरे से तात्पर्य शक्ति से है और *कृष्ण*

भगवान् का नाम है; इसलिए जब हम हरे कृष्ण का कीर्तन करते हैं तो हम कहते हैं, "हे भगवान् की शक्ति, हे भगवान्, कृपया मुझे स्वीकार कीजिए।" भगवान् द्वारा स्वीकृत किये जाने के लिए हमारे पास अन्य कोई प्रार्थना नहीं है। रोज की रोटी के लिए प्रार्थना करने का कोई प्रश्न ही नहीं है, क्योंकि रोटी तो सदैव होती ही है। हरे कृष्ण सम्बोधन भगवान् को केवल यह प्रार्थना करने के लिए है कि वे हमें स्वीकार करें। भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु ने स्वयं प्रार्थना की थी :

अयि नन्दतनुज किङ्करं पतितं मां विषमे भवाम्बुधौ।
कृपया तव पाद पङ्कजस्थित धूलीसदृशं विचिन्तय॥

"हे नन्द महाराज के पुत्र! मैं आपका सनातन दास हूँ और ऐसा होने के बावजूद भी मैं किसी न किसी तरह जन्म और मृत्यु के सागर में गिर गया हूँ। अतः कृपा करके आप मुझे इस मृत्यु के सागर से ऊपर उठाइये और मुझे आपके चरणकमलों में धूल के एक कण के रूप में रखिये।" (शिक्षाष्टक ५)

समुद्र के मध्य गिरे हुए व्यक्ति के बचने की एक मात्र आशा केवल यही होती है कि कोई आएगा और उसे ऊपर उठाएगा। यदि कोई आता है और उसे पानी से कुछ ही फुट ऊपर उठाता है, तो उसे तुरन्त शान्ति मिल जाती है। इसी प्रकार, यदि हम किसी तरह इस जन्म और मृत्यु के सागर से कृष्णभावनामृत की विधि से ऊपर उठाये जाते हैं, तो हमें तुरन्त शान्ति मिल जाती है।

यद्यपि हम भगवान् की दिव्य प्रकृति, उनके नाम, उनके

यश और उनके कार्यकलापों की अनुभूति नहीं कर सकते हैं, फिर भी यदि हम अपने आपको कृष्णभावनामृत में स्थापित करें, तो भगवान् धीरे धीरे स्वयं हमारे समक्ष प्रकट होंगे। हम भगवान् को अपने निजी प्रयास से नहीं देख सकते हैं, परन्तु यदि हम इसके लिए योग्यता प्राप्त कर लें, तो भगवान् स्वयं प्रकट होंगे और तब हम उन्हें देख सकेंगे। कोई भी भगवान् को अपने सामने आने और नाचने के लिए आज्ञा नहीं दे सकता है, परन्तु हमें इस प्रकार कार्य करना है कि कृष्ण भगवान् प्रसन्न होकर स्वयं अपने आप को हमारे समक्ष प्रकट करें।

कृष्ण भगवद्गीता में अपने स्वयं के विषय में जानकारी देते हैं और इसमें संशय करने का कोई प्रश्न नहीं है; हमें केवल अनुभव करना है और समझना है। भगवद्गीता को समझने के लिए किसी प्रारम्भिक योग्यता की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि यह परम स्तर से परमेश्वर द्वारा बोली गयी है। केवल भगवान् कृष्ण के नामों के कीर्तन की सीधी सादी विधि ही एक के बाद एक यह प्रकाशित करेगी कि कोई क्या है, भगवान् क्या हैं, भौतिक और आध्यात्मिक ब्रह्माण्ड क्या हैं, हम बन्धन में क्यों हैं, हम इस बन्धन से मुक्ति कैसे पा सकते हैं, इत्यादि। वास्तव में, श्रद्धा और अनुभूति की विधि हमारे लिए कोई विदेशी विधि नहीं है। हर दिन हम किसी न किसी ऐसी चीज पर भरोसा करते हैं जिस पर हमें विश्वास होता है कि बाद में वह प्रकट होगी। हम भारत जाने के लिए टिकट

खरीद सकते हैं और टिकट के आधार पर हमें विश्वास होता है कि हमें वहाँ ले जाया जायेगा। हम टिकट के लिए धन क्यों दें? हम किसी को भी व्यर्थ में धन नहीं दे देते हैं। कम्पनी मान्यता प्राप्त है, वायु-सेवा मान्यता प्राप्त है, इसलिए विश्वास उत्पन्न होता है। हम साधारण जीवन में भी बिना विश्वास किए एक कदम भी आगे नहीं बढ़ सकते हैं। हमें विश्वास होना चाहिए, परन्तु यह विश्वास किसी ऐसी वस्तु पर होना चाहिए, जो प्रामाणिक है। ऐसा नहीं कि हमें अन्ध विश्वास है, लेकिन हम उसी को स्वीकार करते हैं जो मान्याता प्राप्त है। भगवद्गीता प्रामाणिक शास्त्र है और भारत में हर श्रेणी के लोग इसे शास्त्र के रूप में स्वीकार करते हैं और जहाँ तक भारत के बाहर का प्रश्न है, अनेक विद्वानों ने, धर्मवेत्ताओं ने और दार्शनिकों ने भगवद्गीता का महान् प्रमाणित ग्रन्थ के रूप में स्वीकार किया है। भगवद्गीता की प्रामाणिकता के बारे में कोई प्रश्न नहीं है। प्रोफेसर अल्बर्ट आइन्स्टीन जैसे महान् वैज्ञानिक भी नियमित रूप से भगवद्गीता का पाठ करते थे।

भगवद्गीता से हमें स्वीकार करना होगा कि आध्यात्मिक ब्रह्मांड का अस्तित्व है, जो भगवान् का साम्राज्य है। यदि हमें किसी प्रकार ऐसे देश में ले जाया जाए जहाँ हमें सूचना दी जाती है कि हमें जन्म, मृत्यु, वृद्धावस्था और बीमारी के चक्र में अब और नहीं आना पड़ेगा, तो क्या हम प्रसन्न नहीं होंगे? यदि हम ऐसे स्थान के विषय में सुन लें, तो अवश्यमेव हम वहाँ पहुँचने के लिए जितना सम्भव हो, उतना प्रयत्न करेंगे।

कोई वृद्ध होना नहीं चाहता है; कोई मरना नहीं चाहता है। निस्सन्देह, जो जगह इन दुखों से मुक्त हो, हमारी हार्दिक इच्छा वहाँ जाने की ही होगी। हम इसे क्यों चाहते हैं? क्योंकि हमें अधिकार है, हमारा विशेषाधकार है कि हम ऐसा चाहें। हम सनातन हैं, आनन्दमय हैं और ज्ञान से परिपूर्ण हैं, परन्तु इस भौतिक बन्धन में फँस जाने से हम अपने आप को भूल गये हैं। अतः भगवद्गीता हमें अपने मूल स्वरूप को जागृत करने का लाभ देती है।

शंकराचार्य और बौद्ध मत का अनुसरण करने वाले कहते हैं कि संसार के परे केवल शून्य है, परन्तु भगवद्गीता हमें इस प्रकार निराश नहीं करती है। शून्यवाद के दर्शन ने केवल नास्तिक उत्पन्न किए हैं। हम आध्यात्मिक जीव हैं और हम आनन्द चाहते हैं, परन्तु जैसे ही हमें अपना भविष्य शून्य लगने लगेगा, वैसे ही हमारा झुकाव इस भौतिक जीवन में आनन्द लेने की ओर हो जाएगा। इस प्रकार निर्विशेषवादी लोग यथा सम्भव इस भौतिक जीवन का आनन्द भोग करने का प्रयास करते हुए शून्यवाद के दर्शन पर वाद-विवाद करते हैं। इस तरह से कोई इन मानसिक कल्पनाओं में आनन्द तो ले सकता है, परन्तु इससे कोई आध्यात्मिक लाभ नहीं होता है।

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न काङ्क्षति।
समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम्॥

"इस प्रकार जो दिव्य पद पर स्थित हो जाता है, वह तुरन्त परम ब्रह्म का अनुभव करता है। वह न तो कभी शोक

करता है, न किसी वस्तु को पाने की आकांक्षा करता है। वह प्रत्येक जीव पर समभाव रखता है। उस अवस्था में वह मेरी शुद्ध भक्ति को प्राप्त करता है।" (भगवद्गीता १८.५४)

जिसने भक्तिमय जीवन में प्रगति कर ली है और जो कृष्ण भगवान् की सेवा का आनन्द ले रहा है, वह भौतिक आनन्द से स्वयं ही विरक्त हो जाएगा। भक्ति में किसी के तल्लीन रहने का लक्षण यह है कि वह कृष्ण से पूर्ण रूप से सन्तुष्ट है।



५

कृष्ण का संग करना

यदि कोई उच्च श्रेणी की किसी वस्तु को पा लेता है, तो यह स्वाभाविक है कि वह निम्न श्रेणी की सभी वस्तुओं का त्याग कर देता है। हम आनन्द चाहते हैं, परन्तु निर्विशेषवाद और शून्यवाद ने ऐसा वातावरण उत्पन्न कर दिया है कि हम भौतिक आनन्द के आदी बन गये हैं। आनन्द सर्वोच्च पुरुष के सम्बन्ध में होना चाहिए (*पुरुषः स परः*), जिन्हें हम साक्षात् देख सकते हैं। आध्यात्मिक आकाश में हम भगवान् से आमने-सामने बात कर सकते हैं, उनके साथ खेल सकते हैं, उनके साथ भोजन कर सकते हैं, इत्यादि। यह सब *भक्त्या* अर्थात् प्रेमपूर्वक दिव्य सेवा करने से ही प्राप्त किया जा सकता है। परन्तु इस सेवा में कोई मिलावट नहीं होनी चाहिए। कहने का तात्पर्य यह है कि हमें भगवान् से प्रेम बिना किसी भौतिक लाभ की आशा से करना चाहिए। भगवान् से एक होने के लिए उन्हें प्रेम करना भी एक प्रकार की मिलावट वाली स्थिति है।

आध्यात्मिक जगत और इस भौतिक जगत में एक मुख्य

अन्तर यह है कि आध्यात्मिक ग्रहों पर नेता या प्रमुख का कोई प्रतिद्वन्द्वी नहीं होता है। हर स्थिति में आध्यात्मिक ग्रहों पर प्रमुख व्यक्तित्व भगवान् कृष्ण का ही पूर्ण विस्तार होता है। सभी वैकुण्ठ ग्रहों में भगवान् और उनके विभिन्न अवतार ही प्रधान होते हैं। उदाहरण के लिए, इस पृथ्वी पर राष्ट्रपति या प्रधानमंत्री के पद के लिए प्रतिद्वन्द्विता रहती है, परन्तु वैकुण्ठलोक में हर कोई पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को ही सर्वश्रेष्ठ स्वीकार करता है। जो उनको ऐसा नहीं स्वीकारते हैं या विरोध करने का प्रयत्न करते हैं, उन्हें भौतिक ब्रह्माण्ड में डाल दिया जाता है, जो कि एक कारागार की भाँति है। जिस प्रकार किसी शहर में कारागार होता है और कारागार सारे शहर का बहुत ही नगण्य भाग होता है, उसी प्रकार यह भौतिक ब्रह्माण्ड भी बद्ध आत्माओं के लिए एक कारागार है। यह आध्यात्मिक आकाश का एक नगण्य भाग है, लेकिन यह उससे बाहर नहीं है, जैसे कारागार शहर से बाहर नहीं होता है।

आध्यात्मिक आकाश में वैकुण्ठ ग्रहों के सभी निवासी मुक्त आत्माएं हैं। *श्रीमद्भागवतम्* से हमें ज्ञात होता है कि उनके शरीर के लक्षण बिल्कुल भगवान् के शरीर जैसे होते हैं। इनमें से कुछ ग्रहों में भगवान् दो भुजाओं के साथ प्रकट होते हैं और अन्य में चार भुजाओं के साथ। इन ग्रहों के निवासी भी भगवान् की तरह दो या चार भुजाओं वाले होते हैं और यह कहा जाता है कि कोई भी उनमें और भगवान् में अन्तर नहीं देख सकता है। वैकुण्ठ जगत में पाँच प्रकार की मुक्तियाँ

होती हैं। *सायुज्य मुक्ति* वह मुक्ति है जिसमें कोई भगवान् का अव्यक्त अस्तित्व, जिसे ब्रह्म कहा जाता है, उसमें मिल जाता है। दूसरे प्रकार की मुक्ति *सारूप्य मुक्ति* है, जिसमें किसी को बिल्कुल भगवान् जैसा ही रूप मिलता है। और एक दूसरे प्रकार की मुक्ति *सालोक्य मुक्ति* कहलाती है, जिसमें कोई भगवान् के साथ उसी लोक में रह सकता है। *सार्ष्टि मुक्ति* में किसी के पास वही ऐश्वर्य होता है, जो भगवान् के पास होता है। एक दूसरे प्रकार की मुक्ति में कोई सदैव भगवान् के साथ उनका संगी बन कर रह सकता है—जैसे अर्जुन जो सदैव कृष्ण भगवान् के साथ मित्र की तरह रहता है। मनुष्य को इन पाँचों में से किसी भी प्रकार की मुक्ति मिल सकती है, परन्तु इन पाँचों में से सायुज्य मुक्ति अर्थात् भगवान् के अव्यक्त पहलू में लीन हो जाना, वैष्णव भक्तों को स्वीकार्य नहीं है। वैष्णव भगवान् की उनके वास्तविक रूप में पूजा करना चाहते हैं और उनकी सेवा करने के लिए अपना अलग व्यक्तित्व बनाए रखना चाहते हैं, जबकि मायावादी निर्विशेषवादी दार्शनिक अपने व्यक्तित्व को खो कर सर्वोपरि के अस्तित्व में विलीन होना चाहते हैं। इस प्रकार विलीन होने की न तो भगवान् कृष्ण द्वारा भगवद्गीता में संस्तुति की गई है और न ही वैष्णव दार्शनिकों की शिष्य-परम्परा के द्वारा। भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपने शिक्षाष्टक (४) में इस विषय पर इस प्रकार लिखा है :

न धनं न जनं न सुन्दरीं कवितां वा जगदीश कामये।
मम जन्मनि जन्मनीश्वरे भवताद्भक्तिरहैतुकी त्वयि॥

"हे सर्वशक्तिमान प्रभु, मुझे धन एकत्रित करने की इच्छा नहीं है, न सुन्दर युवतियों के साथ आनन्द भोगने की ही इच्छा है, और न मुझे बहुत से अनुयायी बनाने की ही इच्छा है। मैं केवल यही चाहता हूँ कि मैं आपकी अहैतुकी भक्तिपूर्ण सेवा में जन्म-जन्मांतर लगा रहूँ।"

यहाँ भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु "जन्म-जन्मांतर" शब्द का उपयोग करते हैं। जब बार बार जन्म होता है, तो मुक्ति नहीं हो सकती। मुक्ति पाने पर कोई या तो दिव्य लोकों में जाता है या परम सत्य में विलीन हो जाता है। किसी भी स्थिति में, इस भौतिक संसार में फिर जन्म लेने का प्रश्न नहीं उठता। परन्तु चैतन्य महाप्रभु इस बात की परवाह नहीं करते हैं कि मुक्ति मिलती है या नहीं; उनकी एकमात्र चिन्ता कृष्ण-भावनामृत में लगे रहकर भगवान् की सेवा करने की है। भक्त इसकी चिन्ता नहीं करता है कि वह कहाँ है और न इसकी ही चिन्ता करता है कि उसका जन्म पशु समाज में हो, मनुष्य समाज में हो, देव समाज में हो या और कहीं हो; वह भगवान् से केवल यही प्रार्थना करता है कि वह भगवान् को भूले नहीं और सदैव उनकी दिव्य सेवा में लगा रहने के योग्य बना रहे। ये शुद्ध भक्ति के लक्षण हैं। निस्सन्देह, भक्त चाहे कहीं भी रहे, इस भौतिक शरीर में होते हुए भी आध्यात्मिक साम्राज्य में रहता है। परन्तु वह अपनी निजी उन्नति या सुख के लिए भगवान् से कुछ नहीं माँगता है।

यद्यपि भगवान् कृष्ण संकेत करते हैं कि जो उनकी भक्ति

में लगे हैं, वे सरलता से उनके पास पहुँच सकते हैं, परन्तु जो योगी अन्य योग विधियों का अभ्यास करते हैं, उनके लिए सदैव ही कुछ खतरा बना रहता है। उनको अपना स्थूल शरीर छोड़ने के उचित समय का निर्देशन भगवान् ने भगवद्गीता (८.२३) में दिया है :

यत्र काले त्वनावृत्तिमावृत्तिं चैव योगिनः।
प्रयाता यान्ति तं कालं वक्ष्यामि भरतर्षभ॥

"हे भारतश्रेष्ठ, अब मैं तुम्हें उन विभिन्न कालों के बारे में बतलाउंगा, जिनमें इस संसार से प्रयाण करने के बाद कोई पुनः वापस आता है अथवा नहीं आता है।"

यहाँ कृष्ण बताते हैं कि यदि कोई मनुष्य किसी विशेष समय में अपना शरीर त्याग सके, तो वह मुक्ति पा सकता है और वह फिर इस भौतिक संसार में कभी वापस नहीं आयेगा। इसके विपरीत वे यह भी बतलाते हैं कि यदि कोई दूसरे समय में मरता है, तो उसे फिर वापस आना पड़ेगा। यहाँ पर अवसर की बात है परन्तु वे भक्त जो सदैव कृष्णभावनाभावित हैं, उनके लिए अवसर का कोई प्रश्न नहीं है, क्योंकि भगवान् की भक्ति के कारण उनके लिए कृष्ण के धाम में प्रवेश करना निश्चित है।

अग्निर्ज्योतिरहः शुक्लः षण्मासा उत्तरायणम्।
तत्र प्रयाता गच्छन्ति ब्रह्म ब्रह्मविदो जनाः॥

"जो परम ब्रह्म के ज्ञाता हैं, वे अग्निदेव के प्रभाव में, प्रकाश में, दिन की शुभ क्षण में, शुक्लपक्ष में या जब सूर्य

उत्तरायण में रहता है, उन छह मासों में शरीर त्याग करके इस संसार से प्रयाण करते हैं।" (भगवद्गीता ८.२४)

सूर्य छः महीने विषुवद् रेखा के उत्तर में रहता है और छः महीने दक्षिण में रहता है। *श्रीमद्भागवतम्* में वर्णन मिलता है कि जैसे सभी ग्रह चक्कर लगाते रहते हैं, वैसे ही सूर्य भी चक्कर लगाता है। यदि कोई उस समय मरता है, जब कि सूर्य उत्तरायण में होता है, तो वह मुक्ति पाता है।

धूमो रात्रिस्तथा कृष्णः षण्मासा दक्षिणायनम्।
तत्र चान्द्रमसं ज्योतिर्योगी प्राप्य निवर्तते॥
शुक्लकृष्णे गती ह्येते जगतः शाश्वते मते।
एकया यात्यनावृत्तिमन्ययावर्तते पुनः॥

"जो योगी धुंध के समय, रात्रि, कृष्णपक्ष या सूर्य के दक्षिणायन में रहने के छह महीनों में दिवंगत होता है, या जो चन्द्रलोक पहुँच जाता है, वह पुनः (पृथ्वी पर) आ जाता है। वैदिक मतानुसार इस संसार से प्रयाण करने के दो मार्ग हैं— एक प्रकाश का तथा दूसरा अंधकार का। जब मनुष्य प्रकाश में जाता है, तो वह वापस नहीं आता, किन्तु अंधकार में जाने वाला पुनः लौटकर आता है।" (भगवद्गीता ८.२५-२६)

यह सब अवसर की बात है। हम नहीं जानते हैं कि हम कब मरने वाले हैं और हम आकस्मिक संयोगवश कभी भी मर सकते हैं। किन्तु जो भक्तियोगी है, जो कृष्णभावनामृत में स्थित है, उसके लिए अवसर का कोई प्रश्न नहीं है। वह सदैव विश्वस्त रहता है।

नैते सृती पार्थ जानन्योगी मुह्यति कश्चन।
तस्मात्सर्वेषु कालेषु योगयुक्तो भवार्जुन॥

"हे अर्जुन, जो भक्तगण इन दोनों मार्गों को जानते हैं, वे कभी मोहग्रस्त नहीं होते। अतः तुम सदैव भक्ति में स्थिर रहो।" (भगवद्गीता ८.२७)

यह पहले ही कहा जा चुका है कि यदि कोई मृत्यु के समय कृष्ण भगवान् के विषय में सोच सके, तो वह तुरन्त ही कृष्ण के धाम में स्थानान्तरित हो जाता है।

अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम्।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः॥
अभ्यासयोगयुक्तेन चेतसा नान्यगामिना।
परमं पुरुषं दिव्यं याति पार्थानुचिन्तयन्॥

"और जीवन के अन्त में जो केवल मेरा स्मरण करते हुए शरीर का त्याग करता है, वह तुरन्त मेरे स्वभाव को प्राप्त करता है। इसमें रंचमात्र भी सन्देह नहीं है। हे पार्थ, जो व्यक्ति मेरा स्मरण करने में अपना मन निरन्तर लगाते हुए अविचलित भाव से मेरा ध्यान भगवान् के रूप में करता है, वह मुझको अवश्य ही प्राप्त होता है।" (भगवद्गीता ८.५, ८.८)

कृष्ण भगवान् में ऐसा ध्यान लगाना कठिन लगता है, परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है। यदि कोई **हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण, हरे हरे / हरे राम, हरे राम, राम राम, हरे हरे**—इस महामंत्र का कीर्तन करते हुए कृष्णभावनामृत का अभ्यास करे, तो भगवान् तुरन्त उसकी सहायता करेंगे। कृष्ण

और उनका नाम अभिन्न हैं। कृष्ण और उनका दिव्य धाम भी अभिन्न हैं। शब्द ध्वनि से हम कृष्ण की संगति में रह सकते हैं। उदारहण के लिए, यदि हम सड़क पर हरे कृष्ण का कीर्तन करें, तो हम अनुभव करेंगे कि कृष्ण हमारे साथ चल रहे होते हैं, ठीक उसी तरह, जब हम ऊपर की ओर नजर करके चन्द्रमा को देखते हैं, तो हमें लगता है कि चन्द्रमा भी हमारे साथ चल रहा है। यदि भगवान् कृष्ण की निम्न शक्ति हमारे साथ चलती प्रतीत होती है, तो क्या यह सम्भव नहीं है कि जब हम उनके नामों का कीर्तन करें, तो कृष्ण भगवान् स्वयं हमारे साथ रहें ? वे हमारे साथ रहेंगे, परन्तु हमें अपने आपको उनकी संगति में रहने के योग्य बनाना होगा। यदि किसी प्रकार हम हर समय कृष्ण के विचार में मग्न रहें, तो हमें पूर्णतया विश्वस्त रहना चाहिए कि कृष्ण सदैव हमारे साथ हैं। भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु प्रार्थना करते हैं,

नाम्नामकारि बहुधा निजसर्वशक्ति
स्तत्रार्पिता नियमितः स्मरणे न कालः।
एतादृशी तव कृपा भगवन्ममापि
दुर्दैवमीदृशमिहाजनि नानुरागः ॥

"हे मेरे भगवान्! आपका पवित्र नाम ही हर जीव का कल्याण कर सकता है, इसलिए आपके हजारों और करोड़ों नाम हैं जैसे कृष्ण, गोविन्द इत्यादि। इन दिव्य नामों में आपने अपनी सभी दिव्य शक्तियाँ भर दी हैं और इन पवित्र नामों का कीर्तन करने के लिए कोई कड़े नियम भी नहीं हैं। हे मेरे

भगवान्! आपने कृपापूर्वक अपने पवित्र नामों से आप तक पहुँचना सरल बना दिया है, परन्तु मैं इतना अभागा हूँ कि मुझे इनकी ओर कोई आकर्षण नहीं है।" (शिक्षाष्टक २)

केवल कीर्तन करने से ही हम भगवान् की निजी संगति के सभी लाभ ले सकते हैं। भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु जो केवल एक महान् आत्मदर्शी पुरुष ही नहीं बल्कि स्वयं कृष्ण के अवतार माने जाते हैं, उन्होंने कहा है कि यद्यपि इस कलियुग में आत्म-साक्षात्कार की कोई वास्तविक सुविधा नहीं है, फिर भी कृष्ण इतने दयालु हैं कि उन्होंने इस शब्द (ध्वनि अवतार) को *युगधर्म* अर्थात् इस युग में आत्म-साक्षात्कार करने की विधि के रूप में उपयोग करने के लिए प्रदान किया है। इस विधि के लिए किसी विशेष योग्यता की आवश्यकता नहीं है, यहाँ तक कि हमें संस्कृत भाषा जानने की भी आवश्यकता नहीं होती है। हरे कृष्ण की ध्वनि तरंगें इतनी शक्तिशाली हैं कि कोई भी मनुष्य संस्कृत भाषा के तनिक भी ज्ञान बिना तुरन्त उसका कीर्तन करना प्रारम्भ कर सकता है :

वेदेषु यज्ञेषु तपःसु चैव
दानेषु यत्पुण्यफलं प्रदिष्टम्।
अत्येति तत्सर्वमिदं विदित्वा
योगी परं स्थानमुपैति चाद्यम्॥

"जो व्यक्ति भक्तिमार्ग को स्वीकार करता है, वह वेदाध्ययन, तपस्या, यज्ञ, दान, दार्शनिक तथा सकाम कर्म

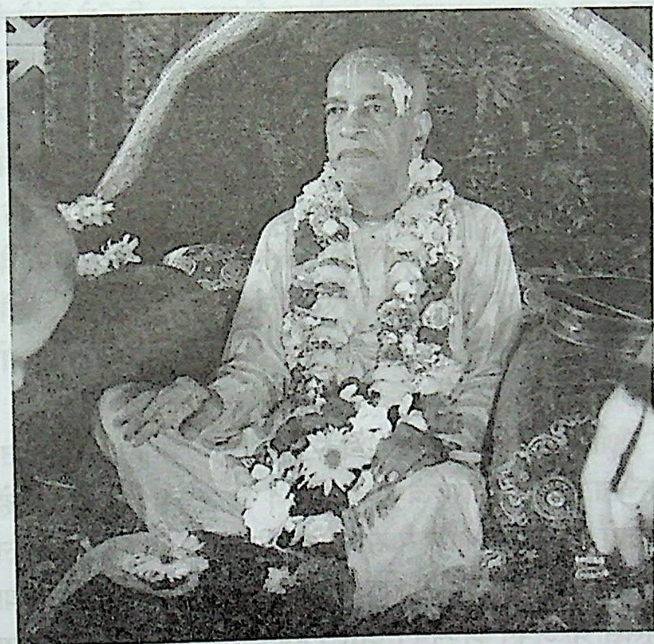
करने से प्राप्त होने वाले फलों से वंचित नहीं होता। अन्ततः वह परम नित्यधाम को प्राप्त होता है।" (भगवद्गीता ८.२८)

यहाँ पर कृष्ण कहते हैं कि समस्त वैदिक शास्त्रों के अध्ययन का उद्देश्य जीवन के परम लक्ष्य को प्राप्त करना है, और वह है, भगवान् के धाम वापस जाना। सभी देशों के सभी शास्त्रों का यही उद्देश्य है। सभी धार्मिक सुधारकों और आचार्यों का भी यही सन्देश रहा है। उदाहरण के लिए पाश्चात्य देशों में ईसा मसीह ने भी इसी सन्देश का प्रचार किया था। इसी प्रकार भगवान् बुद्ध और मोहम्मद ने भी यही किया। कोई यह उपदेश नहीं देता है कि हम इस भौतिक संसार में स्थायी रूप से रहने की व्यवस्था करें। देश, काल, परिस्थिति तथा शास्त्रों के आदेशों के अनुसार थोड़ी सी भिन्नता भले ही हो, परन्तु मुख्य सिद्धान्त कि हम इस भौतिक संसार के लिए नहीं, अपितु आध्यात्मिक जगत के लिए बने हैं, सभी सच्चे अध्यात्मवादियों के द्वारा स्वीकार किया जाता है। आत्मा की आन्तरिक इच्छाओं की संतुष्टि के सभी चिह्न जन्म-मृत्यु से परे कृष्ण भगवान् के लोकों की ओर संकेत करते हैं।



लेखक परिचय

कृष्णकृपामूर्ति श्री श्रीमद् ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद का आविर्भाव १८९६ ई. में भारत के कलकत्ता नगर में हुआ था। अपने गुरु महाराज श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती



गोस्वामी से १९२२ में कलकत्ता में उनकी प्रथम भेंट हुई। एक सुप्रसिद्ध धर्म तत्त्ववेत्ता, अनुपम प्रचारक, विद्वान-भक्त, आचार्य एवं चौसठ गौड़ीय मठों के संस्थापक श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती को ये सुशिक्षित नवयुवक प्रिय लगे और उन्होंने वैदिक ज्ञान के प्रचार के लिए अपना जीवन समर्पित करने की इनको प्रेरणा दी। श्रील प्रभुपाद उनके छात्र बने और ग्यारह वर्ष बाद (१९३३ ई.) प्रयाग (इलाहाबाद) में उनके विधिवत् दीक्षा-प्राप्त शिष्य हो गए।

अपनी प्रथम भेंट में ही श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने श्रील प्रभुपाद से निवेदन किया था कि वे अंग्रेजी भाषा के माध्यम से वैदिक ज्ञान का प्रसार करें। आगामी वर्षों में श्रील प्रभुपाद ने भगवद्गीता पर एक टीका लिखी, गौड़ीय मठ के कार्य में सहयोग दिया तथा १९४४ ई. में बिना किसी की सहायता के एक अंग्रेजी पाक्षिक पत्रिका आरम्भ की। उसका सम्पादन, पाण्डुलिपि का टंकण और मुद्रित सामग्री के प्रूफ शोधन का सारा कार्य वे स्वयं करते थे। अब यह उनके शिष्यों द्वारा चलाई जा रही है और तीस से अधिक भाषाओं में छप रही है।

श्रील प्रभुपाद के दार्शनिक ज्ञान एवं भक्ति की महत्ता पहचान कर गौड़ीय वैष्णव समाज ने १९४७ ई. में उन्हें भक्तिवेदान्त की उपाधि से सम्मानित किया। १९५० ई. में श्रील प्रभुपाद ने गृहस्थ जीवन से अवकाश लेकर वानप्रस्थ ले लिया जिससे वे अपने अध्ययन और लेखन के लिए अधिक समय

दे सकें। तदनन्तर श्रील प्रभुपाद ने श्री वृन्दावन धाम की यात्रा की, जहाँ वे अत्यन्त साधारण परिस्थितियों में मध्यकालीन ऐतिहासिक श्रीराधा-दामोदर मन्दिर में रहे। वहाँ वे अनेक वर्षों तक गम्भीर अध्ययन एवं लेखन में संलग्न रहे। १९५९ ई. में उन्होंने संन्यास ग्रहण कर लिया। श्रीराधा-दामोदर मन्दिर में ही श्रील प्रभुपाद ने अपने जीवन के सबसे श्रेष्ठ और महत्त्वपूर्ण कार्य को प्रारम्भ किया था। यह कार्य था अठारह हजार श्लोक संख्या वाले *श्रीमद्भागवतम्* पुराण का अनेक खण्डों में अंग्रेजी में अनुवाद और व्याख्या। वहीं उन्होंने अन्य लोकों की सुगम यात्रा नामक पुस्तिका भी लिखी थी।

श्रीमद्भागवतम् के प्रारम्भ के तीन खण्ड प्रकाशित करने के बाद श्रील प्रभुपाद सितम्बर १९६५ ई. में अपने गुरुदेव के आदेश का पालन करने के लिए संयुक्त राज्य अमेरिका गए। तत्पश्चात् श्रील प्रभुपाद ने भारतवर्ष के श्रेष्ठ दार्शनिक और धार्मिक ग्रन्थों के प्रामाणिक अनुवाद, टीकाएँ एवं संक्षिप्त अध्ययन-सार के रूप में साठ से अधिक ग्रन्थरत्न प्रस्तुत किए।

जब श्रील प्रभुपाद एक मालवाहक जलयान द्वारा प्रथम बार न्यूयार्क नगर में आये तो उनके पास एक पैसा भी नहीं था। अत्यन्त कठिनाई भरे लगभग एक वर्ष के बाद जुलाई १९६६ ई. में उन्होंने, अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ की स्थापना की। १४ नवम्बर १९७७ ई. को, कृष्ण-बलराम मन्दिर, श्रीवृन्दावन धाम में अप्रकट होने के पूर्व श्रील प्रभुपाद

ने अपने कुशल मार्ग-निर्देशन से संघ को विश्वभर में सौ से अधिक आश्रमों, विद्यालयों, मन्दिरों, संस्थाओं और कृषि समुदायों का बृहद् संगठन बना दिया।

श्रील प्रभुपाद ने श्रीधाम मायापुर, पश्चिम बंगाल में एक विशाल अन्तर्राष्ट्रीय केन्द्र के निर्माण की प्रेरणा दी। यहीं पर वैदिक साहित्य के अध्ययनार्थ सुनियोजित संस्थान की योजना है, जो अगले दस वर्ष तक पूर्ण हो जाएगा। इसी प्रकार श्रीवृन्दावन धाम में भव्य कृष्ण-बलराम मन्दिर और अन्तर्राष्ट्रीय अतिथि भवन तथा श्रील प्रभुपाद स्मृति संग्रहालय का निर्माण हुआ है। ये वे केन्द्र हैं जहाँ पाश्चात्य लोग वैदिक संस्कृति के मूल रूप का प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त कर सकते हैं। मुंबई में भी श्रीराधारासबिहारीजी मन्दिर के रूप में एक विशाल सांस्कृतिक एवं शैक्षणिक केन्द्र का विकास हो चुका है। इसके अतिरिक्त भारत में दिल्ली, बैंगलोर, अहमदाबाद, बड़ौदा तथा अन्य स्थानों पर सुन्दर मन्दिर हैं।

किन्तु, श्रील प्रभुपाद का सबसे बड़ा योगदान उनके ग्रन्थ हैं। ये ग्रन्थ विद्वानों द्वारा अपनी प्रामाणिकता, गम्भीरता और स्पष्टता के कारण अत्यन्त मान्य हैं और अनेक महाविद्यालयों में उच्चस्तरीय पाठ्यग्रन्थों के रूप में प्रयुक्त होते हैं। श्रील प्रभुपाद की रचनाएँ ५० से अधिक भाषाओं में अनूदित हैं। १९७२ ई. में केवल श्रील प्रभुपाद के ग्रन्थों के प्रकाशन के लिए स्थापित भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट, भारतीय धर्म और दर्शन के क्षेत्र में विश्व का सबसे बड़ा प्रकाशक हो गया है। इस ट्रस्ट

का एक अत्यधिक आकर्षक प्रकाशन श्रील प्रभुपाद द्वारा केवल अठारह मास में पूर्ण की गई उनकी एक अभिनव कृति है जो बंगाली धार्मिक महाग्रन्थ श्रीचैतन्यचरितामृत का सत्रह खण्डों में अनुवाद और टीका है।

बारह वर्षों में, अपनी वृद्धावस्था की चिन्ता न करते हुए श्रील प्रभुपाद ने विश्व के छहों महाद्वीपों की चौदह परिक्रमाएँ कीं। इतने व्यस्त कार्यक्रम के रहते हुए भी श्रील प्रभुपाद की उर्वरा लेखनी अविरत चलती रहती थी। उनकी रचनाएँ वैदिक दर्शन, धर्म, साहित्य और संस्कृति के एक यथार्थ पुस्तकालय का निर्माण करती हैं।





विश्व के सर्वश्रेष्ठ वैदिक ज्ञान के प्रचारक श्रील प्रभुपाद आत्मा के रोमांचक प्रवास के विषय में, जो मृत्यु के बाद होता है, प्रमाणभूत जानकारी दे रहे हैं.....

ISBN 978-93-82176-87-9

